1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No.MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-2, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2018 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

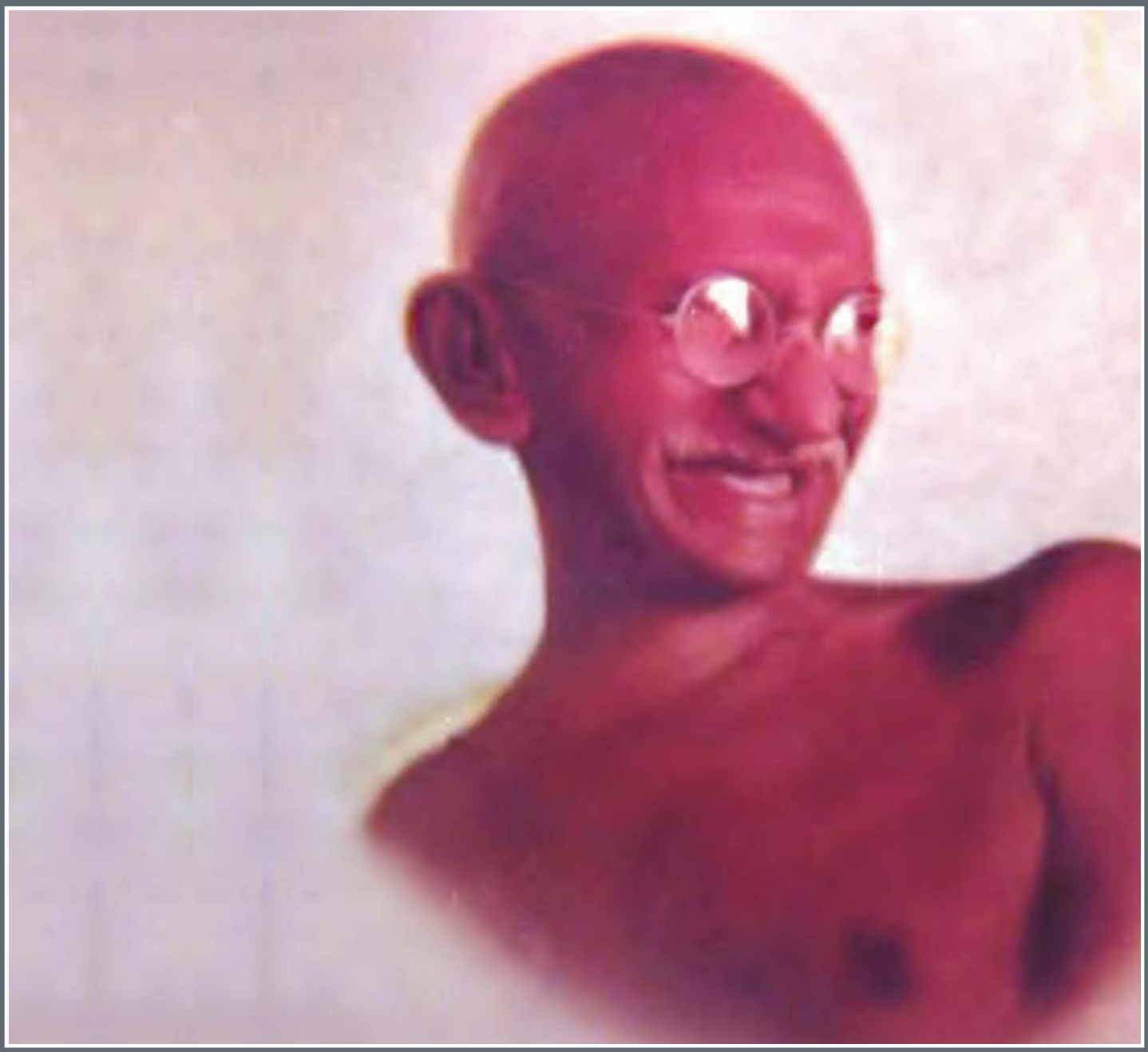

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

महात्मा गाँधी का 150 वां जयंती वर्ष

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

'अमर जवान' पुलिस शहीद स्मारक, भोपाल (म.प्र.) निसर्गवादी सिमेंट शिल्पाकृति (१ फुट ऊँची) : डी.जे. जोशी

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(वर्ष : 21+2) पूर्णांक-95,
वर्ष-2, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2018

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजयशंकर मिश्र
पं. सुरेश तांतेड़

परामर्श
लक्ष्मी नारायण पयोधि
ललित शर्मा
राम तेलंग
प्रो. सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
डॉ. शशि सांखला
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. अरविंद सक्सेना
चन्द्र मोहन सक्सेना
प्रो. कमल कौशिक

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
देवेन्द्र सक्सेना
9414291112
आस्था सक्सेना
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

शब्दचित्र में कला समय, 26 अक्टूबर 2018, मिंटो हॉल
चित्रकार : रेखा भटनागर

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामू भैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
संगीता सक्सेना
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढे (एडवोकेट)

सहयोग राशि

वार्षिक	**: 150 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 175 /-	**(संस्थागत)**
द्वैवार्षिक	**: 300 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 350 /-	**(संस्थागत)**
चार वर्ष	**: 500 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 600 /-	**(संस्थागत)**
आजीवन	**: 5,000/-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 6,000/-	**(संस्थागत)**

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजें)

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सुविधा : 'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराईट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना ना करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

देश के शिल्पकार, चित्रकारों ने रचा नया विश्व इतिहास

पद्म भूषण रामवन सुतार
'स्टैच्यू ऑफ युनिटी' :
धातु शिल्पाकृति
गुजरात

डी.जे. जोशी
'श्रृंगार करती आदिवासी नारियाँ' : तैल चित्र
भोपाल

रुद्रहंजी
'छांदत हाथी' : शिल्पाकृति
ग्वालियर

इस बार

- संपादकीय / 5
  लोक का आलोक
- साक्षात्कार / 6
  हवा का हवा में चित्रांकन ही संगीत है : पं. अजय चक्रवर्ती / पं. विजयशंकर मिश्र
- व्याख्यान / 10
  मेकलसुता से मोलोंग्लो तक / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- आलेख / 13
  अष्टांग - गायकी ग्वालियर / प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
- आलेख / 16
  दिया- भारतीय संस्कृति का बेजोड़ प्रतीक / डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव
- आलेख / 19
  संगीत: सन्दर्भ गीत का / वीरेन्द्र आस्तिक
- आलेख / 22
  अपनी माटी, संस्कारों तथा संस्कृति की सुरभी बिखेरता एक अलहदा चित्रकार -ईश्वरी रावल / संदीप राशिनकर
- मध्यांतर / 24
  रूपांकन कला तिराहा : अर्वाचीन मध्यप्रदेश / प्रो. राजाराम
- विश्व कविता / 26
  सुविख्यात रुसी कवयित्री वेरा पावलोवा की कुछ कविताएं, अनुवाद : मणि मोहन
  राम अधीर के गीत / 27
  प्रेमशंकर शुक्ल की कविताएँ / 28
  सुरेश पबरा 'आकाश' की ग़ज़लें / 29
- आलेख / 30
  लोक संस्कृति के आलोक में संजा (सांझी) पर्व / डॉ. वर्षा नालमें
- आलेख / 35
  आदिमगंधी यथार्थ कल्पनाओं के रचाव का सुख / डॉ. कहानी भानावत
- पुस्तक समीक्षा / 38
  कला को समर्पित: झालावाड़ की मूर्तिकला परम्परा / डॉ. उर्मिला शर्मा
  दस्तावेजी पुस्तक 'मालवा की कला-विभूति पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकरणकर': एक परिचय / युगेश शर्मा / 40
- आयोजन / 41
  छप-छप करते, अब कहाँ बारिश के वो गीत ?/ पं. सुरेश तांतेड़
  अलंकृत हुईं छह कला विभूतियाँ / 42
- समवेत
  ध्रूवपद ख्याल ठुमरी और गजल गायकी की अविरल धारा बही पंडित गामा महाराज स्मृति समारोह में / राष्ट्रीय संगीतज्ञ परिवार एक सांस्कृतिक संस्था / बलराम गुमास्ता का कविता पाठ / दिव्यांग कलाकारों की सुंदर प्रस्तुतियाँ / मध्यप्रदेश का 63वां स्थापना दिवस समारोह / भारत भवन में रंग एकाग्र छः दिवसीय नाट्य समारोह / झलकियाँ / श्रद्धांजलि / संस्था समाचार : कला समय संस्था का कविता पाठ / ललित शर्मा का शोध ग्रंथ 'राजाराणा झाला जालिम सिंह' पुस्तक का लोकार्पण / आपके पत्र।
- कला समय : नवांकुर, नन्हें कलाकारों की दुनिया / 49
  सौम्या बैराठी, तनिष्का हतवलने
- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में / 50
  निर्मिश ठाकर

आर.के. फड़के
'घुड़सवार छत्रपति शिवाजी' : धातु शिल्पाकृति देवास

श्रेणिक जैन
'बड़नगर की बोहरानियाँ' : भित्ति चित्र
इंदौर

रमेश नूतन
प्रतिभा पर्ण : शिल्प रिलिफ
नूतन कॉलेज भोपाल

प्रो. राजाराम
आवरण चित्रकार
महात्मा गाँधी, तैल चित्र, ग्रीस

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - राजाराम | **अंतिम आवरण चित्र** - रामवन सुतार
छायाचित्र - मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन** - मनोहर काजल | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास

संपादकीय

लोक का आलोक

''कुछ साथ में चलते रहे
कुछ बीच से ही फिर गए
पर गति न जीवन की रूकी
जो गिर गए सो गिर गए
चलता रहे हरदम की सफलता
अभिराम है चलना हमारा काम है''
-शिवमंगल सिंह 'सुमन'

प्रकृति ने बड़े जतन से मानव को इस धरती पर उतारा उसके उस प्रकृति से कई तरह के वादे भी हुए होंगे जिसमें समय की कमजोरी मानकर हाँ में उत्तर जरूर दिया होगा कहा होगा मैं प्रकृति का आजीवन ऋणी उपकार मानूंगा पर क्या उसे आज भी याद है वो सब वादे जो उस वक्त उसने प्रकृति से किये थे। लगता है कल की ही बात है। बात-बात में वह प्रकृति से बात करता, मनुहार करता, उसकी गोद में खेलता कूदता आगे बढ़ा और धीरे-धीरे प्रकृति से वह सब माँगता चला गया। प्रकृति भी उसे उदार भाव से सहायता की सीमाओं को लांघती वे सब देती गई जो-जो मानव जीवन को जीने और आगे बढ़ने के लिये आवश्यक थी। पर मनुष्य ने धीरे-धीरे इन नि:शुल्क सम्पदा को उजाड़ता चला गया और लोक से आलोक की, प्रारम्भ से प्रस्थान की, उदय से अस्त की, रचना से विनाश की इस भागम-भाग को विकास का नाम देकर अपने आप से छलावा कर रहा है। अगर मानव जिसे आज तरक्की कहता है तो वो कल जिसे उसने खूब जिया उसे हम क्या कहेंगे ?

मनुष्य ने जब जन्म लेकर मिट्टी से अपना रिश्ता जोड़ा था तो मिट्टी ने उसे घर दिया जिसमें वह रह सके। मिट्टी ने उसे बर्तन दिये जिसमें भोजन पकाकर खा सके, मिट्टी ने अन्न दिया जिससे अपनी भूख प्यास मिटा सके, मिट्टी ने ही अन्य जीव-जन्तु, पशु-पक्षी दिये जिससे उसने अपना रिश्ता जोड़ा। उनसे संवाद कर भाषा बोली नामकरण दिया उसमें खेत, पर्वत, झरने, नदी ने स्वर दिये धुनें दी संगीत का पूरा का पूरा रूपक दिया प्रकृति ने ही रंग दिये, संस्कार भी दिये, प्रकृति ने पानी, आग, हवा, ऋतु और उत्सव दिये। वह भूल गया जब जन्म लेता था तो कुदरती माता अपने बच्चों को जन्म दे देती थी और काम पर लग जाती थी। पत्थरों की रगड़ से ही आटा पिसता था। पशु पालतू बनाये तो उन्होंने हर घर में दूध-दही की अफरात कर रखी थी। गाय-बैलों ने मानव के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर धरती का पेट चीर कर अन्न उपजाया और गौवंश कहलाया। त्योहार को हर दिन की तरह उसने अपने समय को जीया हर छोटी-छोटी खुशी को मनुष्य ने प्रकृति से जोड़ा। प्रकृति ने भी तन-मन-धन से उदारता के साथ दिया और जीवन बढ़ता चला गया।

पर जब से पगडंडी पर शहर ने कदम रखा शहरीकरण किया तब से जिसे हम विज्ञान कह रहे हैं वहीं से उसके साथ-साथ हम गांव के जीवन से दूर वहाँ के रहन-सहन, आबो-हवा, खान-पान, भाषा-बोली, संस्कारों को पीछे छोड़ कर हमने गांव में वाहनों को प्रवेश दिया फिर गाय के स्थान पर भैंस तथा ''घट्टी'' (देशी चक्की) के स्थान पर विद्युत चक्की दीपक की जगह जगमग लाइटें खान-पान से लेकर पहनावा, रहन-सहन सबका सब प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य ने जिसे आधुनिकता का नारा दिया उसमें माता-पिता भाई-बहनों से किनारा किया पढ़ाई, तरक्की के नाम पर परिवार टूटे बैठकर खाने के स्थान पर चलते फिरते खाना-नहाना, सोना-बैठना सारे संस्कार जो हमें विरासत में मिले थे उससे हमें बीमरी से तो मुक्ति थी ही मनुष्य बलवान था प्रमाण हमारी इमारतें गवाह है उस वक्त वे सब मानव निर्मित थी आज सब विज्ञान निर्मित होने से मनुष्य की आयु, स्वास्थ्य तो प्रभावित हुआ ही है। इस आधुनिकीकरण ने पर्यावरण को बुरी तरह प्रभावित कर यह देवरूपी धरती आज नरक में तबदील हो गई जिसे हम धार्मिक नदियों का नाम देते थे। आज हम किनारे पर जाने में कतराते हैं मानवता का दुश्मन मनुष्य खुद हो गया। संवेदना, रिश्ते सबके सब अमानवीय हो गये। ऐसे समय को हम लोक कहें या आलोक आधुनिक किरण ने ही लोक को निगल लिया है।

दीपावली की शुभकामनाएँ

- भँवरलाल श्रीवास

हवा का हवा में चित्रांकन ही संगीत है : पं. अजय चक्रवर्ती

विश्वविख्यात शास्त्रीय गायक पं. अजय चक्रवर्ती का नाम आज किसी परिचय का मोहताज नहीं। 1952 में एक मध्यमवर्गीय संगीतरसिक परिवार में जन्मे अजय चक्रवर्ती की गणना आज प्रथम पंक्ति के शास्त्रीय गायकों में की जाती है। बचपन से ही मेधावी प्रतिभा के धनी रहे अजय ने रवीन्द्र भारती से बी.ए. (प्रतिष्ठा) और एम.ए. की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करने के साथ-साथ स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया। एक स्कॉलर के रूप में संगीत रिसर्च अकादमी (टालीगंज) से स्वर्ण पदक प्राप्त करने वाले वह संगीत के पहले छात्र हैं। आज वह इसी संस्था में वरिष्ठ गुरु और विशेषज्ञ समिति के सदस्य हैं। बी.बी.सी. तथा पाकिस्तान सरकार द्वारा आमंत्रित किये जाने वाले वह प्रथम भारतीय संगीतज्ञ हैं। बी.बी.सी. ने भारत की स्वाधीनता की स्वर्ण-जयंती के अवसर पर उन्हें आमंत्रित किया था। साथ ही पं. चक्रवर्ती प्रतिष्ठित कुमार गंधर्व सम्मान तथा सर्वश्रेष्ठ फिल्म पार्श्व गायक का सम्मान पाने वाले पहले शास्त्रीय गायक हैं। वह ऐसे गायक हैं जो शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, भक्ति, नजरूल एवं बांग्ला आदि गीतों को पूरी भाव-प्रवणता के साथ प्रस्तुत करने में कंठसिद्ध हैं। भारत-पाकिस्तान सहित अनेक यूरोपीय देशों तथा अमेरिका आदि ने उनके द्वारा प्रस्तुत विभिन्न गान विधाओं के सीडी कैसेट प्रसारित किये हैं। यहां प्रस्तुत है पिछले दिनों पं. चक्रवर्ती से शास्त्रीय संगीत के कई महत्वपूर्ण मुद्दों को लेकर हुई बेबाक बातचीत।

पं. विजयशंकर मिश्र

● **आज संगीत, संगीतकार और संगीत शिक्षा की जो स्थिति है-उस पर आपकी क्या राय है ?**

– भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखने के लिए कड़ी साधना करनी पड़ती है, क्योंकि यह संगीत संस्कार से उत्पन्न होता है। इसमें अनेक साधक की सकारात्मक और नकारात्मक सोच जुड़ी होती है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि संगीत के गुण तो सभी गाते हैं, यह भी मानते हैं कि यह अच्छी कला है और इसे सीखना चाहिए। लेकिन अपने बच्चों को संगीत सिखाने का प्रयास बहुत कम लोग करते हैं। जिस तरह समाज में लोग शादी की अनिवार्यता स्वीकारते हैं, वंश चलाने के लिए कम-से-कम एक सन्तान उत्पन्न करते हैं, उस तरह संगीत की सिमटती परम्परा के विषय में लोग क्यों नहीं सोचते ? इसका उत्तर संगीतकारों को देना होगा, नहीं तो आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें माफ नहीं करेंगी।

मैं इससे इन्कार नहीं करता कि संगीत मूलत: स्वकेंद्रित कला है। लेकिन हिमालय की गुफाओं में बैठकर तपस्या करने वाले उन साधुओं की क्या कोई सामाजिक भूमिका नहीं है जो सिर्फ अपने मोक्ष की चिन्ता करते हैं ? यही बात संगीतज्ञों पर भी लागू होती है। आखिर हम जिस समाज में रहते हैं उसके प्रति भी तो हमारी कोई जिम्मेवारी है। आपने सीखा, गाया और दुनिया से कूच कर गये, इसका अर्थ तो यही हुआ कि आप सिर्फअपने लिए ही सोचते हैं। आप यह क्यों नहीं सोचते कि जिस तरह किसी अन्य से सीखकर आपने दिव्यानंद की अनुभूति की, उसी तरह दूसरे लोगों को भी इस आनन्द का अनुभव कराने का दायित्व भी तो आपका ही है। आखिर हम जिस दुनिया में रहते हैं...जिस धरती पर हमारा निवास है, जहाँ की हवा में हम साँस लेते हैं, जहाँ का अन्न-जल ग्रहण कर हम जिन्दा हैं....जिस तरह सूर्य से हम प्रकाश ग्रहण करते हैं, फूलों की खुशबू का आनन्द लेते हैं, चाँदनी का सुख भोगते हैं-उसी तरह इस विश्व-समाज के प्रति हमारी भी कोई जिम्मेदारी है। हमें प्रकृति की ओर से सब कुछ नि:शुल्क मिल रहा है। यह अलग बात है कि अब पानी बिकने लगा है। लेकिन मूल बात यह है कि मैं संगीत को बुनियादी जरूरत मानता हूँ और मानता हूँ कि इसे सबको सीखना चाहिए। दुनिया के हर काम में संगीतात्मकता हो सकती है-बोलने में भी और सोचने में भी। लेकिन इसे समझना होगा। कठिनाई यह है कि जिन लोगों के हाथों में शक्ति है, जो लोग इसकी समझ विकसित करने की व्यवस्था कर सकते हैं, वे इसकी ओर से उदासीन हैं। इसलिए यह जिम्मेदारी अब संगीतकारों की है कि वे इस कला का जितना विकास कर सकते हैं, करें।

● **लेकिन, आप संगीत को बुनियादी जरूरत किस आधार पर कह रहे हैं ?**

– इस विषय में मेरी सोच बिल्कुल साफ है। मैं मानता हूँ कि दुनिया का हर व्यक्ति संगीतकार नहीं बन सकता। बनना भी नहीं चाहिए। बावजूद

इसके मैं चाहता हूँ कि संगीत के संस्कार हर व्यक्ति में हों। क्योंकि जिसके अंत:करण में स्वर और लय का वास होता है, वह अराजक नहीं होता, हिंसक नहीं होता, भ्रष्ट नहीं होता। संगीत इन्सान में इन्सानियत की भावना को विकसित करने में सहायक होता है। यह मानवीय गुणों का विकास करता है। इसीलिए मैं संगीत को बुनियादी शिक्षा के साथ जोड़ने का पक्षधर हूँ।

- **आज अनेक शास्त्रीय संगीतज्ञों को यह चिन्ता सता रही है कि भारत में विदेशी संगीत का प्रचलन जोर पकड़ता जा रहा है। क्या सचमुच भारतीय संगीत को पाश्चात्य संगीत से कोई खतरा है ?**

– इसका मतलब तो यही हुआ कि आपको भी उन कलाकारों के बयान पर भरोसा नहीं है जिनकी दृष्टि में भारतीय संगीत पर खतरा मँडरा रहा है। भारत में पहली बार तो पाश्चात्य संगीत का प्रवेश नहीं हो रहा है। इसके पहले भी अनेक विदेशी कलाकार भारत में अपनी प्रस्तुतियाँ देते रहे हैं। अनेक भारतीय भी विदेशी संगीत सीखते रहे हैं। लेकिन इसमें बुरा क्या है ? क्या पाश्चात्य संगीत के प्रभाववश हमारा मालकौंस विहाग बन गया ? पता नहीं लोग क्यों नहीं समझ पाते कि भारती शास्त्रीय संगीत जीवन्त संगीत है। सर्वाधिक प्राचीन संगीत होते हुए भी इसकी जीवन्तता और ताजगी पर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। देखिये यमन कितना प्राचीन राग है। सदियों से लोग इसे गा रहे हैं, लेकिन इसकी हर प्रस्तुति नये अन्दाज में होती है। हर बार नया आयाम दृष्टिगत होता है। तात्पर्य यह कि यमन इतना विस्तृत राग है कि इसे पूरी तरह आज तक कोई नहीं जान पाया है। इसीलिए हर बार इसका रूप बदलता है, लेकिन मूलाधार वही होता है। यमन-यमन ही रहता है, पूरिया नहीं बन जाता है। अगर आप एक पुरानी कहानी के रूप में देखें तो यमन वह हाथी है जिसका किसी ने सिर्फ पैर जाना है, किसी को सिर्फ उसके सूँड के विषय में पता है तो कोई सिर्फ उसकी पूँछ से परिचित है। अगर हाथी रूपी पूरे यमन को लोग जान लेते तो फिर शायद यमन में यह ताजगी इतने वर्षों तक नहीं रहती। संगीत में सुरों की यह तलाश अनवरत चलती रहती है। इस तलाश का एक अलग आनन्द होता है जिसे हम स्वयं भी अनुभव करते हैं और अपने श्रोताओं को भी कराते हैं। राग हमारे लिये ईश्वर के समान होते हैं। ईश्वर-जिसे हम मानते हैं, जिसकी शक्ति का अनुभव करते हैं किन्तु उसे कभी हमने देखा नहीं। क्योंकि वह अदृश्य और निराकार है। इसलिए हम जब भिन्न-भिन्न स्वरावलियों के माध्यम से रागरूपी ईश्वर का चित्रांकन करते हैं तो अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर उसका बहुविध शृंगार भी करते हैं। यह शृंगार हर बार अलग होता है।

- **कहा जाता है कि संगीत और संघर्ष का बहुत पुराना रिश्ता है। इसे आप किस रूप में लेते हैं ?**

– मैंने बहुत गरीबी में दिन बिताए हैं। मेरे पिता प्राथमिक विद्यालय के 254 रुपये पाने वाले शिक्षक थे। मुझे वे दिन भी याद हैं, जब मैं दो पैसे का नमक और तीन पैसे का तेल खरीदता था। प्लेटफॉर्म पर सोने की तकलीफ भी मैं जानता हूँ और उस नींद में जब पुलिस का डण्डा पड़ता है तो उस डण्डे की चोट को भी। मैं किस्सा-कहानी नहीं, अपनी जिन्दगी की हकीकत बयान कर रहा हूं। लेकिन, मैं स्वयं को सबसे अमीर और भाग्यशाली व्यक्ति समझता हूँ, क्योंकि मेरे पास वह दौलत है जिसे कोई चोर-डाकू मुझसे नहीं छीन सकता। मैं पाँच कोठियाँ, तीन मर्सीडीज कारें और करोड़ों के बैंक बैलेंस की चाहत नहीं पाले हूँ। क्योंकि यह तो किसी के पास भी हो सकता है। बस, थोड़ा-सा रास्ता बदलने की, आत्मा को मारने की जरूरत है। लेकिन मुझ जैसे लोगों के साथ जो धन-संपदा है वह गिने-चुने सौभाग्यशाली लोगों को ही मयस्कर होती है। इसके लिए शरीर ही नहीं, मन को भी तपाना पड़ता है। हमारे पास विहाग और मालकौंस है, जिनकी तुलना कोठियों और गाड़ियों जैसी मामूली चीजों से नहीं की जा सकती।

- **आपकी दृष्टि में संगीत क्या है ?**

– मैं संगीत को इन्सान की बुनियादी जरूरत मानता हूँ। वह हवा का हवा में चित्र बनाने जैसा मुश्किल काम है। मुश्किल इसलिए कि हवा को तो किसी ने देखा ही नहीं है। फिर भी उसके कितने रूप हैं। राग संगीत की साधना करने वाले हवा के इन विभिन्न रूपों का चित्रांकन हवा में करते हैं। हवा में ही हम साँस लेते हैं। साँस लेने और छोड़ने की प्रक्रिया भी संगीत का ही एक अंग है। कब और कहाँ, कैसे साँस ली जाये इसकी पूरी तकनीक है संगीत में। इस साँस की एक निश्चित स्थान पर अवतारणा स्वर कहलाता है। संगीत में 'डिफनिट फ्रीक्वेंसी' भी है और 'इनडिफिनिट फ्रीक्वेंसी' भी। गाना केवल 'सा' और 'रे' में ही नहीं होता। सा और रे के बीच के अन्तराल का भी संगीत में प्रयोग होता है। हमारा रागदारी संगीत वस्तुत: डिफनिट और इनडिफनिट फ्रीक्वेंसी का मिक्सचर है। यह स्पेस सिर्फ भारतीय संगीतज्ञ ही जानते हैं। इसके बाद है समय-जो लगातार चलता रहता है। अभी-अभी हमने जो कहा वह अतीत बन गया। इसीलिए कहते हैं कि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। इस समय का थोड़ा-सा अंश लेकर हम बंदिशें बनाते हैं, जिसमें ताल और स्वर का सामन्जस्य होता है।

समय, फ्रीक्वेंसी-यह सब कुछ प्रकृति का दिया हुआ है। यह ईश्वर प्रदत्त है, खुदा की देन है। संगीत में इनके अलावा जिन अन्य तत्वों की जरूरत पड़ती है उनमें से एक है सौन्दर्यबोध (एस्थेटिक सेंस)। हर किसी ने कली को देखा है, हर किसी ने फूल को देखा है। लेकिन कली को फूल बनते हुए किसने देखा ? वस्तुत: यही है राग-संगीत। 5-6 स्वरों के राग का यही विविध विस्तार कली को फूल बनाने की प्रक्रिया कहलाती है। हर घराने के गायक इसे करते हैं। बस करने का ढंग अलग होता है। किराना घराने के गायक स्वरों के आधार पर इसे करते हैं, ग्वालियारवाले बहलावे के माध्यम से और पटियालावाले तान अंग से। संगीत में जिन रचनाओं की प्रस्तुतियाँ होती हैं वह बंदिश कहलाती है, जिनका तात्पर्य अनुशासन होता है। इस अनुशासन का सिर्फ संगीत में ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र में महत्व होता है।

- **लेकिन संगीत और अभिव्यक्ति कई प्रकार की दुहाई देकर संगीतकार प्राय: कई प्रकार की स्वतन्त्रताएँ स्वत: हस्तगत कर लेते हैं। फिर, इस बंदिश और अनुशासन का क्या अर्थ रह जाता है ?**

– समय के साथ-साथ अनुशासन का अर्थ भी बदलता है। एक समय था जब गुरु को साष्टांग दण्डवत किया जाता था। बाद में लोग सिर्फ पैर छूने लगे और अब तो प्राय: नमस्ते कहने से भी काम चल जाता है। संगीत के अनुशासन में कलात्मक स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति की पूरी गुंजाइश है। तकनीकी शिक्षा की बात अलग है। लेकिन मूल्यगत शिक्षा के लिए मैं एक नयी प्रणाली-एजुकेशन सीरीज-का सिलेबस तैयार कर रहा हूँ। यह एक पुस्तक और वीडियो के रूप में होगा।

- **आपने संगीत में आने का निश्चय कब किया ?इसे प्रोफेशन बनाने के विषय में कब सोचा ?**

– यह निश्चय मैंने नहीं किया। मैं तो दो वर्ष की उम्र से गा रहा हूँ। तब मुझमें इतनी बुद्धि कहाँ थी कि मैं इसे कैरियर बनाने की सोचता। यह निश्चय तो मेरे माता-पिता ने किया था जो खुद अच्छा गाते थे लेकिन व्यावसायिक संगीतकार नहीं थे। घर में कीर्तन और भक्ति संगीत का माहौल था। अत: संगीत के संस्कार तो मुझे घर से ही मिले। लेकिन मेरी दृष्टि में संगीत को प्रोफेशन कहना गलत है। यह प्रोफेशन की चीज ही नहीं है। प्रोफेशन का अर्थ मेरी दृष्टि में परफैक्शन है। लेकिन आज इसका अर्थ पैसा हो गया है। मेरा मानना है कि जिनका ध्यान परफैक्शन पर होगा वही प्रोफेशनल होगा। जैसे गावस्कार प्रोफेशनल बैट्समैन और उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ साहब प्रोफेशनल गायक थे। लेकिन, आज जिन लोगों के सन्दर्भ में प्रोफेशनल शब्द का प्रयोग होता है, वस्तुत: वे प्रोफेशनल नहीं कामर्शियल हैं। और, ये दोनों शब्द एक-दूसरे से बहुत अलग हैं। इसे आज के कलाकारों को याद रखना होगा कि संगीत व्यावसायिक कला नहीं है। यह बिकाऊ वस्तु नहीं है। लेकिन, आज संगीत की पूरी अवधारणा ही बदल गयी है। कलाकारों को परखनेवाली लोगों की दृष्टि भी आज धूमिल हो गयी है। जो गिटार लेकर चिल्ला रहे हैं वे भी कलाकार हैं और जो मालकौंस में ध्यानस्थ हैं वे भी कलाकार हैं।

- **मगर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में प्रवेश नि:शुल्क होने के बावजूद सभागार खाली क्यों पड़े रहते हैं ?जबकि, उमंग, जोश और जवानी के नाम पर सम्पन्न होने वाले संगीत-समारोहों में मुहावरे की भाषा में कहें तो तिल रखने की भी जगह नहीं होती। शास्त्रीय संगीत की अलोकप्रियता के पीछे आप किन कारणों को देखते हैं ?**

– मैं आपसे ही जानना चाहता हूँ कि क्या जोश और जवानी के नाम पर शालीन संगीत नहीं पेश किया जा सकता ? उमंग और उत्साह के नाम पर हर बार फूहड़ नाच ही क्यों प्रस्तुत किया जाता है ? फिल्में भी प्राय: फूहड़ ही बनने लगी हैं। इस फूहड़ता से विकृत मानसिकता के लोग अपनी काम कुण्ठाएँ शान्त करते हैं। इसलिए इस फूहड़ता से आप शास्त्रीय संगीत की तुलना नहीं कर सकते। क्योंकि शास्त्रीय संगीत को सेक्स की तरह नहीं बेचा जा सकता है। सेक्स का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह भी हमें पता है। लेकिन सेक्स ही सबकुछ नहीं है। हर जगह सेक्स का चित्रण उचित नहीं।

- **क्या शास्त्रीय संगीत के रसास्वादन के लिए इसका ज्ञान होना जरूरी है ?**

– मुझे ऐसा नहीं लगता। माधुरी दीक्षित सुन्दर है क्या यह जानने के लिए एनाटोनी (शरीर विज्ञान) जानना जरूरी है ? क्या इसके लिए सिर्फ दो आँखें ही पर्याप्त नहीं हैं ? मैं आपसे पहली बार मिल रहा हूँ। आपसे बातें करके बहुत अच्छा लग रहा है। लेकिन, इस खुशी के लिए आपका पूरा परिचय जानना तो जरूरी नहीं है। इसी प्रकार जिसके संगीत में दम है, जिसमें साधन की चमक है, वह तो लोगों को प्रभावित करेगा ही।

- **घराना परम्परा में आपकी कितनी आस्था है ?**

– बिल्कुल भी नहीं। मैं घराना परम्परा को बिल्कुल नहीं मानता।

आश्चर्य ! क्योंकि आपके नाम के साथ तो प्राय: पटियाला घराने का नाम जोड़ा जाता है। आपको उस घराने का प्रतिनिधि कहा जाता है।

पता नहीं कौन लोग ऐसा कहते हैं और क्यों कहते हैं ? मैं अपना जो परिचय लोगों को देता हूँ उसमें कहीं भी पटियाला घराने का नाम नहीं होता है। घरानों की लकीरें पीटने वाले लोग हर किसी के साथ किसी घराने का नाम जोड़कर आनन्द का अनुभव करते हैं। लेकिन मैं तो घराना परिपाटी को बिल्कुल नहीं मानता। क्योंकि, यह गलत सोच है। जब पूरी दुनिया में एक जैसे दो लोग नहीं हो सके तो फिर घराना परम्परा का क्या अर्थ है ? घराना परम्परा का वास्तविक गुण तो यह है कि उस परम्परा की विशेषताओं का उत्तरोत्तर विकास हो। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ का महत्त्व इसीलिए है कि वैसा कोई दूसरा गायक पैदा नहीं हुआ। अगर वैसे चार कलाकार और हो जाते तो आज उनका जो महत्त्व है, वह नहीं रह जाता। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ के नाम के साथ मेरा नाम जोड़कर लोग पटियाला घराने का नाम लेते हैं। लेकिन मैं पूरी ईमानदारी से कह रहा हूँ कि उनकी गायकी के सामने मैं तो एक पैसे की भी हैसियत नहीं रखता। फिर मेरी तुलना उनसे कैसे हो सकती है ? यहीं, मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि कई मुद्दों पर मेरी सोच उनसे बिल्कुल भिन्न है।

- **एक बात और। पं. रविशंकर, उस्ताद अली अकबर खाँ या पं. भीमसेन जोशी आदि ने संगीत की शिक्षा तो दी ही है। लेकिन, अगर उनके शिष्य उनकी ऊँचाइयाँ नहीं पा सके तो इसमें उन गुरुओं का क्या दोष है ?फिर, यह भी तो हो सकता है कि इनके शिष्य भी भविष्य में उन्हीं ऊँचाइयों का स्पर्श करें। क्योंकि इन कलाकारों ने भी तो कठिन संघर्ष किया है। तब किसे पता था कि ये आगे चलकर एक नया इतिहास लिखेंगे ?**

– भविष्य के विषय में मैं कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता। लेकिन इतना जरूर कहना चाहूँगा कि सारा दोष शिष्यों पर ही डालकर गुरुओं को पूरी तरह बरी भी नहीं किया जा सकता। शिष्य तो कच्ची मिट्टी का लोंदा है, जिसे मनचाहा आकार गुरु ही देते हैं। शागिर्द तो बच्चा है। उसे ऊँचाई पर ले जाने की जिम्मेदारी तो उस्ताद की ही है।

- **आपको क्या लगता है–आप दूसरा अजय चक्रवर्ती बना पाएँगे ?**

– मैं अजय चक्रवर्ती से अच्छे कलाकार बनाऊँगा। अगर मेरे शिष्य भी मेरे ही जैसे हुए तो यह मेरी सफलता नहीं असफलता होगी। चूँकि मैं जानता हूँ कि अजय चक्रवर्ती में कौन–कौन सी कमियाँ और बुराइयाँ हैं, अत: मैं अपने शिष्यों में उन कमियों और बुराइयों को नहीं पनपने देता। मैं उन्हें अपने जैसा नहीं, अपने से अच्छा बनाने का प्रयास करता हूँ। उन्हें समझाता भी हूँ कि देखो यहाँ तुम मुझे फॉलो मत करो। आप मुझ पर, मेरी क्षमताओं पर विश्वास रखिये। मैं अपने जीवन–काल में ही अजय चक्रवर्ती से दोगुना अच्छा कलाकार बनाऊँगा। मेरे कई शिष्य काफी अच्छा गा रहे हैं। वे आपको एक डेढ़–घण्टे तक इतना अच्छा गाना सुना सकते हैं कि आप बीच में उठकर जा नहीं सकते।

- **आपको कई पुरस्कार और मान–सम्मान मिल चुके हैं। इसका श्रेय किसे देते हैं आप ?**

– संगीत को। आज मेरा जो भी नाम और सम्मान है वह संगीत के ही कारण है। मैंने सबकुछ संगीत से ही कमाया है, अत: उसे संगीत के लिए ही खर्च करना है मुझे। पत्नी के गहने या मकान बनवाने के लिए इन पैसों को खर्च करना मेरी दृष्टि में अपराध है, पाप है। मुझे जो धनराशि मालकौंस या बागेश्री से मिल रही है उसे भौतिक सुख–सुविधाओं के लिए खर्च करने का भला क्या औचित्य है ? एक बात और, दूसरे अनेक क्षेत्रों में भारत विदेशी–विशेषज्ञों से प्रेरणा और मदद लेता है। कई क्षेत्रों में हम अमेरिका, ब्रिटेन और जापान आदि देशों का अनुकरण करते हैं। लेकिन, संगीत के क्षेत्र में पूरी दुनिया हमारा अनुकरण कर रही है। केवल एक स्वर या स्वर–समूह लोगों को वाह कहने के लिए विवश कर देता है। सम्मोहित कर देता है। यह प्रभाव संगीत का है। अत: इस धरोहर को बचाये रखना हमारी जिम्मेदारी है। इसलिए मैं संगीत के सभी समर्थ और क्षमतावान कलाकारों से प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वे इस परम्परा को बचाए और बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयास करें।

'शंकरा' 705 डी/21सी, वार्ड नं.–3, महरौली, नई दिल्ली–110030
दूरभाष (011) 26641963/09810517945, E-mail : anhad@sify.com

दीक्षा डुडेजा की कृति

दीक्षा डुडेजा एक आला दर्जे की अलग तर्ज़ की शायरा है। उनकी शायरी बंध–मुक्त है। शायरी की एक बेरोक–टोक लड़ी देखी जा सकती है दीक्षा की कविताओ में हम जिस नज़र से शायरी को देखते है जैसे वो नज़र उन्होंने पकड़ ली है, इसलिए वो अपनी नहीं हमारी ही कहानियां बयाँ करती हुई चलती है अपनी पहली किताब 'कच्चे–पक्के रंग' '' में । किताब का नाम इस लिहाज़ से भी सही बैठता है क्यूंकि उनकी किताब में आपको हर तरीके का रंग देखने मिलेगा! शायरी की इस किस्म को बेहद कम शायरों में देखा गया है। उनकी किताब का हर सफ़्हा एक नए रंग से सरोबर करता चलता है अपने दर्शक को। जी हाँ, दर्शक को ! दर्शक इसलिए क्यूंकि आप सही में देख पाते है उनकी शायरी के रंगों–बू को और ये भी कि कैसे वो अपनी कलम से मुनफ़रिद ऐवान बनाते हुई चलती हैं। एक खूबसूरत शेर है उनकी किताब से –

मेरी रूह तक पहुँचने की तुझे आरजू हो अगर,
मेरे चश्म से गुज़र कर मेरे दिल में उतर आना ।

दीक्षा उर्दू और हिंदी में तो लिखतीं ही है लेकिन अंग्रेजी भाषा पर भी उनकी तीखी पकड़ है इस लिहाज़ से देखा जाए तो अदब की साधना उनका जिन्दगी का लक्ष्य कहा जाना गलत नहीं। किताब को अलग अलग भागों में बांटा गया है पढने की सुविधा के लिए लेकिन फिर भी लगता है जैसे किताब एक कहानी लिए आगे बढ़ती है और आखिरी सफ्हे में अपनी मंजिल पा लेती है।

मुझ से झूठ की बनावट की उम्मीद ही ना करना
खुदा के घर से आया हूँ खुदा के घर को जाना है।

अच्छी शायरी से मुहब्बत करने वालों को इस किताब को जरुर पढना चाहिए। फिलहाल दीक्षा अपनी दूसरी किताब लिखने में मसरूफ है। इस बार लेकिन शायद हम उनकी नस्र से मुलाकात करेंगे। आखिर में यही आशा है कि दीक्षा की कलम को बरकत हासिल हो और हम उनकी कलम के नए शाहकार पढ़ते रहें।

– ज्योति आर्या

व्याख्यान

नेशनल गैलरी ऑफ ऑस्ट्रेलिया, कैनबरा में दिए गए व्याख्यान के कुछ अंश

मेकलसुता से मोलोंग्लो तक

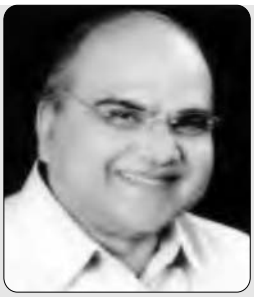

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

आदरणीय वरिष्ठ संग्राहक रॉबिन मैक्सवेल, इस व्याख्यान सत्र की संयोजक तथा भारतीय कला को समर्पित, कु. ब्रॉनविन कैम्पबेल, नेशनल गैलरी ऑफ ऑस्ट्रेलिया के समर्पित कलामनीषी तथा ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न अंचलों से आए कला मर्मज्ञ तथा मित्रों

मेरे लिए ये सौभाग्य व ऐतिहासिक महत्व के क्षण हैं, जब मैं भारतीय कला तथा उसकी लघुचित्र परम्परा के संबंध में, जो भारत की महान और शाश्वत धरोहर है, आपसे चर्चा करने यहां उपस्थित हूं।

मुझसे सुश्री ब्रॉनविन ने पूछा कि मेरे नाम का क्या अर्थ है ? मेरे नाम का अर्थ है भारत की महान पवित्र नदी नर्मदा का प्रसाद अर्थात् मैं इस महान नदी की एक छोटी देन हूँ। मैं मेरे प्रदेश, जिसे मध्यप्रदेश के नाम से जाना जाता है, की इस ऐतिहासिक और दिशा के विपरीत संघर्ष करते हुए बहने वाली नर्मदा के तटों के किनारे बसे एक छोटे से गांव हरदा में जन्मा और पला-बढ़ा हूँ। भारत में नदियों को पवित्र भाव से पूजने की महान परम्परा है तथा हम मानते हैं कि भारत की नदी संस्कृति ने उसे सदैव हरा-भरा रखा है तथा उसके विकास में अपना महान योगदान दिया है। कैनबरा जिस महान मोलोंग्लो नदी के किनारे बसा है, मैं इस नदी को भी इसी सांस्कृतिक भाव से देखता हूँ और आज सोचता हूँ कि नर्मदा, जिसका एक नाम मेकलसुता भी है, ने मोलोंग्लो से मिलकर कहीं एक सांस्कृतिक समन्वय की शुरूआत की है।

मैं कल शाम को ही इस महान देश की इस मनोरम राजधानी कैनबरा पहुंचा हूं और यहां की विलक्षण नैसर्गिक शोभा को देखकर अभिभूत हो उठा हूं। इस सुन्दर राजधानी को हम भारतीय लोग अनेकों संदर्भों के माध्यम से जानते रहे हैं। भारतीय लघुचित्रों का अद्भुत गेयर-एण्डरसन संग्रह इस राजधानी की धरोहर है, जिसके कारण आपके इस देश की अपनी सांस्कृतिक पहचान बनी है। मोलोंग्लो नदी के तटों पर बसा यह सुन्दर शहर भारत में अपने फैडरल पार्लियामेन्ट हाउस के मनोहारी, भव्य और विलक्षण शिल्प के कारण जाना जाता है और हम भारतीय तहे दिल से इस अप्रतिम शिल्प के महान शिल्पी वॉल्टर ब्यूरले ग्रिफ्फिन को याद करते हैं, जिनका भारत से गहरा संबंध रहा और जिन्होंने अपनी अंतिम सांसें भारत में ली। जहां तक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य का प्रश्न है, मैं इस शहर को लघुकथा लेखक तथा उपन्यासकार मैरियों हैलिगॉन तथा प्रख्यात कवि एलेन गोल्ड, पीटर कॉरिस, माइकेल थेवेइट्स तथा जॉन स्कॉट की कृतियों के माध्यम से जानता हूं और यह मानता हूं कि अपनी विरासत और परम्परा दोनों की ही दृष्टि से यह शहर साहित्य और कला का संगम और सेतु है। इस संग्रहालय में जो मध्यकालीन भारतीय लघुचित्र रखे हैं, वे साहित्य और कला के सेतु हैं। वे राग-रागनियों, महान काव्यों तथा कथानको के आधार पर भारतीय चितेरों के द्वारा पूरे समर्पण भाव के साथ उरेहे गए हैं।

मैं प्रख्यात स्विस कलाकार पॉलक्ली का स्मरण करना चाहता हूं, जिन्होंने कहा था कि कला कृतित्व की मुस्कान है। मैं उनके इस विचार को भारतीय परम्परा के परिप्रेक्ष्य में यह कहते हुए व्यक्त करना चाहता हूं कि कला केवल कृतित्व की मुस्कान भर नहीं है, बल्कि वह नृत्य, संगीत व गायन जैसे उन समस्त अनुशासनों का भी समन्वित रूप से प्रतिनिधित्व करती है, जो मानवीय संवेदना और चेतना से उपजते हैं। भारतीय मनीषा कृतित्व को सीमित नहीं बल्कि विस्तारित रूप में देखती है। समग्रता, उसकी आत्मा है। भारतीय कला दर्शन के संबंध में कुछ अधिक कहना विषयान्तर होगा, किन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहूंगा कि भारतीय कला का उद्देश्य यदि काम-लीलाओं का अंकन भी रहा है तो वह भी कहीं न कहीं गहरे आध्यात्मिक बोध से उपजा है। ओढ़ी हुई नकली नैतिकता में भारतीय कला दर्शन का कभी विश्वास नहीं रहा तथा इस दर्शन की धारा वेदों से शंकर तक, विवेकानन्द से अरविन्द तथा डॉ. आनन्दकुमार स्वामी तक निरन्तर प्रवहमान रही है। भारतीय चिन्तन के उषाकाल से लेकर आज तक जो कुछ भी लिखित और वाचिक रूप में उपलब्ध है, वह विभिन्न अनुशासनों के रूप में सुरक्षित है तथा उसकी अपनी ऐसी गरिमामय परम्परा है, जो पूरे विश्व को अनुप्राणित करती रही है तथा करती रहेगी।

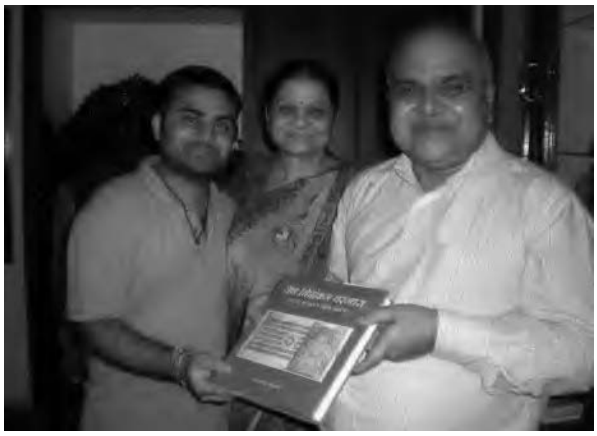

मैं अपने साथ इसी परम्परा के कुछ ऐसे सूत्र साथ लाया हूं, जो इस तथ्य के साक्षी हैं कि भारत के विभिन्न अंचलों में उत्तर-मध्यकाल में कुछ ऐसी लघुचित्र शैलियां भी जन्मीं थी, जिन्हें संभवत: कोई राज्याश्रय प्राप्त नहीं हुआ, जो कलाकारों के समर्पण भाव से जन्मीं, जो उनकी अडिग आस्था की अभिव्यक्ति बनी और जिन्होंने यह सिद्ध किया कि कलाकार का भाव ही सर्वोपरि है तथा यही भाव भारत की सृजन परम्परा को परिभाषित करता है। इस अवसर पर मैं आपको दिखाने के लिए अपने साथ 6-7 सी.डी. लाया हूं, ऐसे अभी तक अचीन्हें लघुचित्रों की तस्वीरें लाया हूं तथा इनसे संबंधित अपनी पाण्डुलिपियां भी लाया हूं ताकि आप समग्रता में इन लधुचित्रों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकें। मैं कैनबरा में गेयर-एण्डरसन संग्रह के चित्रों का अध्ययन करने के लिए कुछ दिन रूकूंगा, इसलिए मेरा आपसे यह भी निवेदन है कि आप समय के सीमित रहने के संबंध में चिंतित न हों तथा मुझसे चर्चा करने के लिए संकोच भी अनुभव न करें। मैं आपसे खुले मन से चर्चा कर अपने आपको भी समृद्ध करना चाहता हूं, क्योंकि मैं मानता हूं कि मुझे अभी आप जैसे मनीषियों और प्रतिभा पुरूषों से बहुत कुछ सीखना है और अपने देश जाकर आपसे प्राप्त मौलिक विचारों के माध्यम से कुछ नया खोजना और रचना है।

अपने इस प्रथम व्याख्यान में मैं अपने अभी तक के भारतीय लघुचित्रों के अध्ययन के संबंध में अपनी कुछ स्थापनाऐं रखना चाहता हूँ।

पिछले 25 वर्षों के भारतीय लघुचित्रों के अध्ययन के दौरान मेरे कुछ अपने निष्कर्ष रहे हैं। इन निष्कर्षों का सार यह है कि गुजरी शताब्दी में केवल उन्हीं लघुचित्र शैलियों के संबंध में खोज और शोध होती रही, जो मध्यकाल के विभिन्न कालखण्डों में राज्याश्रयों में फली फूली। बीत शताब्दी इन्हीं मनोरम, बारीक, भव्य और आभिजात्य शैलियों के अध्ययन की गवाही देती है। मेरा मानना है कि जिन लोक कलाकारों ने बिना किसी प्रश्रय के अपने लोक से जुड़े रहकर, लोक को उकेरते हुए पूरे समर्पण भाव से अपनी शैली में जो लघुचित्र चित्रित किए, उनका अध्ययन नहीं के बराबर हुआ है। मेरा यह भी मानना है कि जिन राज्याश्रयों में पलने वाली लघुचित्र शैलियों का अध्ययन बीती सदी में हुआ, वह अध्ययन एकांगी किस्म का अध्ययन है। एकांगी से मेरा तात्पर्य यह है कि कलाविदों ने इन लघुचित्रों के तकनीकी पक्ष का तो गहन अध्ययन किया लेकिन इन लघुचित्रों के मानस को वे नहीं पढ़ पाए। गीत गोविन्द, बाराहमासा, महाभारत, भागवत, रामायण और केशव तथा बिहारी के श्रृंगार ग्रंथों को आधार बनाकर जो लघुचित्र बने, उनकी व्याख्या में वह भाव रूप कहीं परिलक्षित नहीं होता, जो इन ग्रंथों के सर्जक और चितेरे के मानस में विद्यमान रहा है। गीत गोविन्द में समाया राधा का अद्भुत समर्पण भाव, जो चितेरे ने रूपायित किया है, उस भाव की व्याख्या नहीं हो पाई। इस संदर्भ में कांगड़ा शैली के उस बेहद लोकप्रिय लघुचित्र की मैं चर्चा करना चाहता हूँ, जिसमें राधा और कृष्ण के वास परिवर्तन को दर्शाया गया है। यह चित्र गीत गोविन्द की अंतिम अष्टपदी पर आधारित है। इस लघुचित्र में कृष्ण राधा को अपना मोर मुकुट पहना रहे हैं, पीताम्बर ओढ़ा रहे हैं और अपने वस्त्रों से उन्हें सज्जित कर रहे हैं। गीत गोविन्द की अंतिम अष्टपदी का यह भाव रूपायन है। राधा और कृष्ण का जब पूर्ण मिलन हो जाता है, तब भोर में राधा का कृष्ण से यही आग्रह रहता है कि मैं अब कृष्णमय हो गई और कृष्ण, राधामय, इसलिए मुझे मेरे वे वस्त्र पहनाओ, जो मिलन के पूर्व मेरी पहचान थे। मुझे तुम्हारे वस्त्र पहनाओ, क्योंकि अब में राधा नहीं रही। मेरा मानना है कि इन चित्रों के इस भाव पक्ष का भी उसी तरह अध्ययन होना चाहिए, जैसा कि इन चित्रों के तकनीकी पक्ष का अध्ययन किया गया है। यह इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि बिना इस भावपक्ष को जाने चितेरे की मानसिकता नहीं जानी जा सकेगी। पश्चिम के चित्रकारों के संबंध में यह प्रयास किया गया है कि उनकी उस मानसिकता का अध्ययन किया जाए, जिस मानसिकता में रहते उन्होंने चित्रांकन का कार्य सम्पन्न किया। विंशी, केरेवेग्यो, अल्ग्रेको, वॉल्जाक, रेम्ब्राँ, वॉन गॉग और पिकासो से लेकर पॉल क्ली, अर्नेस्ट, पोलॉक और रिचर्ड हेमिल्टन तक चित्रांकन की जो परंपरा चली आई, उसने इन चितेरों के मानस को पढ़ने की कोशिश विद्यमान रही। क्यूबिज्म के विकास का पिकासो के जीवन प्रसंगों के संदर्भ में अध्ययन किया गया।

इसी तरह वॉन गॉग की आत्महत्या जिस कुण्ठा से जन्मी, उसे उसके चित्रों में खोजने की कोशिश की गई। भारतीय संदर्भ में यह महत्वपूर्ण नहीं है कि इन चितेरों ने जिन लघुचित्रों को बनाया है, उस पर उनके निजी जीवन की छाप है या नहीं ? वास्तविकता यह है कि उसके निजी जीवन की छाप इन लघुचित्रों पर नहीं के बराबर है। भारतीय चितेरे ने उस समग्रता के भाव के साथ चित्र बनाए हैं, जो उसकी अपनी निधि थी। यह समग्रता उसके एकनिष्ठ समर्पण से सीधी जुड़ी हुई थी, लेकिन भारतीय चितेरे के इस उदात्त मानस को नहीं पढ़ा जा सका। यदि इस संदर्भ में अन्य विविध आयामों पर विचार करें तो यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में साहित्य और कला को जोड़कर अध्ययन किया जाना चाहिए था, जो नहीं किया गया। इनके अर्न्तसंबंध उजागर नहीं हुए, बल्कि विभाजित हुए। साहित्य और कला जाने कितने अनुशासनों में बंटे और इस बांटने के कारण वे बिखर गए, उनके एक-दूसरे से रिश्ते टूट गए। मेरे विचार में साहित्य और कला के अर्न्तसंबंधों की बुनियाद पर ही भारतीय लघुचित्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए और यह अध्ययन 21वीं शताब्दी के कलाविदों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

बीती शताब्दी में अकादमिक स्तर की बहुत बहसे हुईं, कई पुस्तकें विभिन्न शैलियों पर लिखी गईं। विद्वान खेमों में बंटे और उन्होंने अपने-अपने ढंग से व्याख्या करते हुए इन लघुचित्रों की शैलियों का निर्धारण किया तथा काल निर्धारण भी किया। मैं इस बात का विरोधी नहीं हूं कि अकादमिक बहस नहीं होना चाहिए, लेकिन वह इस तरह नहीं होनी चाहिए कि इतिहास के सच को जानने से ही अनभिज्ञ हो जाना पड़े। भारतीय लघुचित्र ज्यादातर विदेशी संग्रहालयों में चले गए, व्यक्तिगत विदेशी संग्रहों में चले गए और उन लोगों के हाथों में चले गए, जिनके लिए ये लघुचित्र सिर्फ पुरावस्तु के रूप में अपना आभिजात्य प्रदर्शित करने के उपादान थे। भारत में भी ये लघुचित्र संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहों की शोभा बने रहे, विद्वानों की बहस का विषय बने रहे तथा प्रदर्शनियों में प्रतीक रूप में प्रदर्शित किए जाते रहे। इन चित्रों के बारे में आम आदमी अनभिज्ञ ही रहा। यदि इन लघुचित्रो को लेकर समाज के बीच सार्थक संवाद के साथ जाया जाता, तो निश्चित ही परिदृश्य कुछ दूसरा होता। समाज इस धरोहर के बारे में बड़ी रूचि के साथ जानने की कोशिश करता, क्योंकि यह धरोहर उसी के बीच की थी, उसी की देन थी, जिसे वह सदियों से सहेजता आया। नई शताब्दी में सार्थक संवाद के साथ इन सजीव लघुचित्रों को समाज के बीच ले जाने की महती आवश्यकता, मैं अनुभव करता हूँ।

मेरा यह भी मानना है कि भारतीय लघुचित्रों का परंपरा पथ बड़ा सहज दृश्यमान है तथा इसमें विकास के साथ-साथ परिष्कार की प्रक्रिया भी निरंतर विद्यमान रही, लेकिन अपने पूरे परिप्रेक्ष्य में यह प्रक्रिया बीती सदी में स्पष्ट नहीं हो पाई। मुग़ल क़लम के मुसव्विर जब राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में गए तो उन्होंने अपना तादात्म्य परिवेश के साथ स्थापित किया और इस तादात्म्य को स्थापित करने के दौरान उन्होंने स्वयं को समृद्ध किया और परिष्कृत भी। उनके सम्पर्क में जो स्थानीय कलाकार आए, उन्हें मुग़ल कलम की चमत्कारिक बारीकी की विरासत सहज मिल गई। नतीजा यह हुआ कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो चित्र बने, वे जहां एक ओर मुग़ल क़लम के विकास की कहानी कहते थे, वहीं दूसरी ओर वे अपनी मिट्टी के देशज भाव को भी अभिव्यक्त करते थे और यही अभिव्यक्ति वास्तव में लघुचित्रों के रूपायन का परिष्कार था।

मेरा यह कतई दावा नहीं है कि मैं जो कह रहा हूँ, वह अंतिम रूप से सही है, लेकिन ये मेरे अपने निष्कर्ष हैं। मैं चाहूँगा कि आपकी असहमतियां अधिक से अधिक मुखर हों और वे मैं आश्वस्त हूँ कि वे मुखर होगी, क्योंकि पश्चिम के कला दर्शन और भारतीय कलादर्शन में मौलिक भिन्नताएँ हैं। इसलिए यदि कला दर्शन के धरातल भिन्न होंगे, तो स्थापनाऐं भी भिन्न होंगी, लेकिन मेरे सामने यह चौंकाने वाला तथ्य भी सामने आया है कि पश्चिम के कला मनीषी भारतीय लघुचित्रों के अध्ययन के समय इस बारे में जागरूक रहे हैं और मुझे यह भी अनुभव हुआ है भले ही उन्होंने अनुवाद के स्तर पर कोशिश की, लेकिन यह कोशिश की है कि वे इन चित्रों के संबंध में उपयुक्त संदर्भ दे सकें। लेकिन यह तथ्य अपने स्थान पर विद्यमान रहा कि बात बहुत आगे नहीं बड़ पाई और भाव अध्ययन का क्षेत्र विस्तारित होने से रह गया।

भारतीय लघुचित्रों के संदर्भ में यह तथ्य भी गौरतलब है कि इनके चित्रण का आधार तत्व दैवीय बोध है। भारतीय चितेरे सदैव इसी दैवीय बोध से अनुप्राणित रहे। प्रेम के संदर्भ में, यह दैवीय बोध गीत गोविन्द के रूपायनों में सजीव रूप से मुखर हो उठा है। जहां तक पश्चिम का प्रश्न है, इस प्रकृति का दैवीय बोध बहुधा पाश्चात्य चितेरों के लिए कुतूहल का विषय रहा है। भारतीय संदर्भों में यह दैवीय बोध कहीं भी कृत्रिम या ओढ़ा हुआ नहीं है, बल्कि बड़ा मानवीय भी है।

मैंने बुन्देलखण्ड, मालवा, खानदेश तथा नाथद्वारा से संबंद्ध कुछ ऐसी लोकशैलियों के बारे में जानकारी और चित्र लाया हूँ, जो मेरे उक्त निष्कर्षों को पुष्ट करेंगे। आने वाले समय में मैं विस्तार से आप लोगों से संवाद करते हुए अपने आपको विकसित और परिमार्जित करने का प्रयास करूंगा। अभी मैं पुन: आप सभी के प्रति आभार मानते हुए इस आशा के साथ कि नई सदी की नई भोर आप सभी के जीवन में उस संकल्पभाव को प्राणवान बनाएगी, जो प्रत्येक सृजनधर्मी की आत्मा है, अपने कथन को विराम देता हूँ।

85, इन्दिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केसरबाग रोड
इंदौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

■

आलेख

अष्टांग - गायकी ग्वालियर

सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट
'रसरंग'

ख्याल गायन के क्षेत्र में ग्वालियर ख्याल गायकी को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। ख्याल की उत्पत्ति कहीं भी, कभी भी हुई हो, ग्वालियर के गुणीजनों एवं तत्कालीन शासकों ने उसे सम्मानजनक रूप देकर प्रतिष्ठा दिलाई एवं स्थापित किया। ख्याल गायन के क्षेत्र में ग्वालियर ही सबसे प्रथम घराना है। इसके पश्चात् ही अन्य घरानों का उदय हुआ, इसमें गुणीजनों का अथक परिश्रम एवं विद्यादान की वृत्ति ही सर्वोपरि है। इसी कारण से आज भी ग्वालियर की गायकी की अपनी परम्परा एवं विशेषता सबसे भिन्न है एवं प्रभावशाली है।

ग्वालियर घराने में '**अष्टांग गायकी**' यह शब्द सर्वप्रथम आदरणीय गायन महर्षि पं. कृष्णराव शंकर पंडित ने माधव संगीत महाविद्यालय ग्वालियर में अपने गायन के समय (सन 1960-61 लगभग) कहा था। तभी से यह शब्द सार्वजनिक प्रचार में आया एवं जनसाधारण के कोतूहल का केन्द्र बना। '**अष्टांग गायकी**' के संदर्भ में कई बार प्रश्न पूछे गये, नौंक-झौंक भी हुई, अटकलें लगाई गई, परन्तु 'अष्टांग गायकी' का वास्तविक वर्णन हमेशा ही छुपाया गया। यों कहें कि इसे टाला गया। किसी ने भी इसका सटीक उत्तर नहीं दिया। इसके पीछे कारण कुछ भी हो सकता है। परन्तु यह शब्द आज भी रहस्य बना हुआ है। ग्वालियर के गुणीजन अपने-अपने विचार से इसका वर्णन करते हैं एवं शब्दार्थ के आसपास विचरण करते हैं। परन्तु प्रमाण सहित इस विषय पर चर्चा करने में कतराते हैं या बचने का प्रयास करते हैं।

गायन महर्षि पंडित कृष्णराव शंकर पंडित एवं उनके परिवार के किसी भी सदस्य ने इस विषय पर खुलकर चर्चा करना उचित नहीं समझा। इससे और भी शंकाओं का जन्म हुआ एवं उसका महत्व भी बढ़ा। परन्तु यह निर्विवाद है कि यह शब्द गायन महर्षि पं. कृष्णराव शंकर पंडित ने उद्घृत किया था।

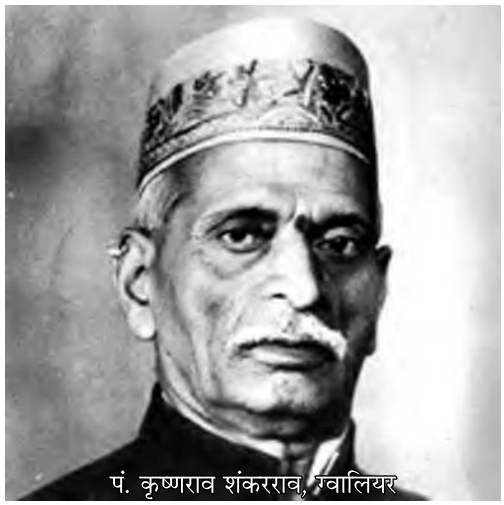

पं. कृष्णराव शंकरराव, ग्वालियर

मेरे विचार से पंडित जी ने ग्वालियर गायकी को एक ही शब्द में (गागर में सागर) कह दिया। पंडित जी ने निश्चित रूप से परोक्ष शिक्षा दी है। जिसके पीछे यह भाव छिपा है कि सतत चिंतन, मनन एवं लगन से इसे खोजने का प्रयास करें, सफलता अवश्य मिलेगी। जैसे 'स्वयं खाना बनाकर खाने में उसका विशेष स्वाद एवं आनंद आता है'। पंडितजी ने भी परोक्ष शिक्षा सार्वजनिक रूप से दी। गुणीजनों द्वारा इस प्रकार से परोक्ष शिक्षा देने की अपनी एक शैली होती है, जिसे पंडित जी ने अपनाया। इसीलिये अष्टांग गायकी आज चिंतन, मनन का विषय है एवं संगीत जगत की जिज्ञासा इसे समझने में है।

मध्य प्रदेश में कटनी शहर के निवासी श्री घनश्यामदास जी (संगीत सेवक) ने अपनी पुस्तक '**भारतीय संगीत विज्ञान**' में अष्टांग गायकी का संक्षिप्त उल्लेख किया है। इससे 'अष्टांग गायकी' गायकी पर कुछ प्रकाश पड़ता है। श्री घनश्यामदास जी ने संगीत की शिक्षा अपने गुरु श्री काशीराम जी से प्राप्त की थी। उनका कहना है ध्रुपद के पांच अंग एवं टप्पा गायकी के तीन अलंकरण मिलकर जो खिचड़ी बनती है उसे ख्याल गायकी कहते हैं एवं इसी को अष्टांग गायकी कहते हैं। श्री घनश्याम दासजी की पुस्तक अनायास ही मुझे मिली। उसमें अष्टांग गायकी का उल्लेख पाकर मैंने उसका गहन अध्ययन किया एवं पाया कि ग्वालियर की ख्याल गायकी निश्चित रूप से अष्टांग गायकी है। यह पुस्तक सन 1956में प्रकाशित हुई। कहते हैं- **जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ** अर्थात अष्टांग गायकी को यदि समझना है तो संगीत के गहरे समुद्र में गोता लगाकर ही समझा जा सकता है। इस संदर्भ में शास्त्रीय संगीत की दो विधाओं को प्रायोगिक रूप से अलग-अलग समझना होगा। तभी अष्टांग गायकी का रूप स्पष्ट होगा। पहली विधा है ध्रुपद एवं दूसरी विधा है टप्पा।

ध्रुपद-

वर्तमान में जो परिभाषा ध्रुपद की है उसे ग्रंथों का पूर्ण आधार प्राप्त है जिसे नकारा नहीं जा सकता। प्रचलित शास्त्रोक्त परिभाषा ध्रुपद के प्रायोगिक पक्ष को स्पष्ट नहीं करती है। अत: ध्रुपद के प्रायोगिक पक्ष को ध्यान में रखते हुये उसकी परिभाषा या वर्णन करना आवश्यक है। 'ध्रुपद' अर्थात ध्रुव-पद के समान अचल है। इसका

(ध्रुपद) पद उचित ताल एवं स्वरों की विशेषताओं से अचल होना चाहिये। या अपरिवर्तनीय होना चाहिये। अर्थात् गायक को तानपूरा के आधार पर गाते समय बेसुरा या बेताना नहीं होना चाहिये। साथ ही पखावजी की संगत (ध्रुमकिट धिरकिट) से लयविचलित एवं स्वरविचलित नहीं होना चाहिये। इस प्रकार ध्रुव के समान ताल, पद स्वर में पद अचल होने की क्रिया को ध्रुपद कहा जाता है। इसीलिये ध्रुपद की परम्परागत गायकी को कठिन माना गया है। वर्तमान में प्रचलित ध्रुपद के पांच अलंकरण विशेष महत्वपूर्ण हैं।

(1905 से 1976) अष्टांग गायकी के प्रमुख गायक
पं. गंगाप्रसाद पाठक, ग्वालियर

ध्रुपद के तत्व-

ध्रुपद गायकी के पांच तत्व माने गये हैं। इस गायकी में तान, पल्टा, खटका, मुरकी आदि पूर्ण रूपेण वर्ज्य हैं। ध्रुपद गायकी में आलापअंग (श्रुति अंगयुक्त) मूल रूप से प्रधान होता है, जिसे मींड, गमक, बोल आदि की प्रधानता होती है। इसी आधार पर उसके पाँच तत्व हैं : 1- पद, 2- रागालाप, 3- गमक, 4-मींड, 5- लयबांट

(1) पद

ध्रुपद की पदरचना विशेष महत्वपूर्ण होती है। इसका साहित्य उच्चस्तरीय होता है, जिसमें प्रथमत: देवी देवताओं के रूप का वर्णन मिलता है जैसे-

आली री भोर ही हमारे भोलानाथ आये,
झूमत मतवारे भस्म अंग रमाये। खप्पर त्रिशूल लिये,
चंद्रमा ललाट दिये, सिंगी धुन पूर रहे। अलग जगाये री।

(2) रागालाप

रागालाप से तात्पर्य प्राचीन रागालाप से कदापि नहीं है। यह वर्तमान में प्रचलित ध्रुपद की आलाप पद्धति ही है। इसकी विशेषता यही है कि राग का स्वरूप पूर्ण रूपेण शुद्ध होना चाहिये। उसमें समप्रकृतिक रागों की छाया न दिखाई दे एवं उपयुक्त श्रुतियों (सूक्ष्मस्वर) का उपयोग होता रहना चाहिये। इस संदर्भ में डागर घराने का आलाप अंग उल्लेखनीय है।

(3) गमक

ध्रुपद का श्रमसाध्य तत्व है गमक, हृदय एवं कंठ की संयुक्त शक्ति से निकलती है। गमक में प्रमुख स्वर के साथ उसके पूर्व स्वर का योग होता है एवं दाना बड़ा होता है। जैसे खाली घड़े के मुहाने पर हथेली को बार-बार मारने से जो आवाज निकलती है वह गमक के समान होती है। यह तत्व गुरु के मार्गदर्शन से ही गले में आता है अन्यथा उसका रूप विकृत भी हो सकता है।

(4) मींड

ध्रुपद का विशेष अंग है। साधारणत: दो स्वरों के अंतर को घर्षण (स्पर्श) करते हुये मिलाने की क्रिया को मींड कहते हैं। दो स्वरों के बीच का अंतर जितना अधिक होगा मींड उतनी ही सरल होगी। मींड यदि सारे या ग म के बीच लेना हो तो कठिन होता है। मींड लेते समय मूल राग का रूप यथावत् रहना अनिवार्य है। ध्रुपद में बड़ी से बड़ी एवं छोटी से छोटी अंतराल की मींड ली जाती है।

(5) लयबांट

लयबांट ध्रुपद का गणितीय पक्ष है जो अत्यंत कठिन है। प्रमुख तथ्य यह है कि ताल की लय एवं आवर्तन यथावत् बनी रहती है, जिसमें धुपदिया एवं पखावजी उसका निर्वाह कुशलता से करते रहते हैं। साथ ही ध्रुपदिया विभिन्न जयकारियों के साथ मुंहपाट का काम, अतीत, अनाघत आदि के साथ गायन करता है। पखावजी भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र रहता है एवं उसी के अनुरूप संगत करता जाता है। दोनों ही ताल की लय एवं आवर्तन को सम्हालते हुये कुशलता से ध्रुपद की सूक्ष्मताओं का प्रदर्शन करते हैं। इसमें विशेष तथ्य ये हैं कि दोनों का ताल छूटता नहीं है। जैसे- गायन में आधारित स्वर यथावत् रहता है, उसी प्रकार ध्रुपद आरंभ होने के पश्चात् निर्धारित ताल का आवर्तन भी यथावत् रहता है। वर्तमान में ध्रुपदियों द्वारा ताल देने की प्रथा चल पड़ी है। परन्तु यह प्रथा आज से 20-25 वर्ष पहले नहीं थी। ताल का आवर्तन बिना ताल दिये भी यथावत् चलता रहता था। यह क्रिया बिल्कुल शतरंज के खिलाड़ी के समान थी, जो खेलते समय 20-25 चालें अपनी एवं विपक्ष के खिलाड़ी की भी निर्धारित करके खेलता जाता है। ध्रुपद का यह अंग अति कठिन है क्योंकि पखावज की संगत भी अबाध रूप से होती रहती है।

टप्पा के अलंकरण

शास्त्रीय संगीत की यह विद्या अति कठिन एवं द्रुतगामी है। इसीलिये इसकी समय-सीमा भी अल्प है। अर्थात 10 मिनट में टप्पा एवं उसकी गायकी सिमट जाती है। कभी-कभी ये 10 मिनट भी गायक को भारी पड़ते हैं। इसीलिये गायक इसे गाने से बचने का प्रयास करता है। इसका प्रभाव दूरगामी होता है। इसकी गायकी में आलाप, गमक, मींड आदि का पूर्ण रूपेण अभाव रहता है। स्वरों से उचकना, कूदना, मुरक जाना, दौड़ जाना आदि क्रियाओं का बहुत्व रहता है। इन्हीं

के माध्यम से टप्पा गायकी सम्पन्न होती है। इस गायकी के मुख्य रूप से तीन अंग हैं :- 1- पद, 2- तान, 3- पल्टे

(1) पद

टप्पा बंदिश के पद रचना साधारणत: पंजाबी भाषा में मिलती है जिसका मुख्य विषय प्रेम है। बंदिश की पदरचना में प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम का वर्णन या ईश्वर के प्रति प्रेम का वर्णन भी मिलता है इसकी पद रचनाओं पर सूफी प्रभाव भी मिलता है।

(2) तान

टप्पा का यह अंग उसमें द्रुत गति लाता है एवं कम समय में अधिकाधिक स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इसीलिये तान के दाने छोटे-छोटे होते हैं। परन्तु तान के बीच में अवरोध बना रहता है। अर्थात् तान रुक-रुक कर गायी जाती है। उसमें निरंतरता का अभाव बना रहता है। सम पर आने के लिये कभी-कभी आरोहावरोह को मिलाकर सपाट तान ली जाती है, जिसे सट्टा भी कहते हैं।

(3) पल्टे

टप्पा गायकी में पल्टों का विशेष महत्व है एवं उनका बहुत्व भी है। पल्टों के क्रम में परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् कई पल्टों के स्वर गुच्छ एक साथ गुंथे रहते हैं। इसी से इस गायकी में जटिलता आती है। इसी क्रम में खटका, मुरकी, जमजमा आदि क्रियायें भी साथ-साथ होती रहती हैं। विशेष उल्लेखनीय तथ्य ये हैं कि बंदिश के बोल भी उपरोक्त क्रिया में जुड़े रहते हैं। इससे यह गायकी कठिनतम हो जाती है। टप्पा गायकी इन्हीं तीन अंगों में सिमट जाती है एवं संक्षिप्त होते हुये भी प्रभावकारी होती है।

उपरोक्त दोनों विधाओं (ध्रुपद एवं टप्पा) के प्रमुख तत्व या अंग ही प्रायोगिक शास्त्रीय संगीत के प्रमुख आधार हैं। प्रायोगिक शास्त्रीय संगीत में इन तत्वों से हटाकर अन्य कुछ भी नहीं है। यदि है भी तो वह सुगम संगीत, लोक संगीत की श्रेणी में आता है या प्रचलित पॉप, रॉक आदि विदेशी प्रभावित संगीत में आयेगा। इन दोनों विधाओं का समग्र रूप से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्वालियर ख्याल गायकी में ध्रुपद एवं टप्पा के सभी अंग पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। ग्वालियर का गायक जाने अनजाने इन सभी तत्वों का उपयोग अपनी गायकी में करता है। इन अंगों का कितनी मात्रा में कब उपयोग करना है यह गायक की क्षमता पर निर्भर करता है। परन्तु यह एकदम सत्य है कि ये अंग ग्वालियर की गायकी में अवश्य दिखाई देते हैं।

अष्टांग आयकी की पृष्ठभूमि का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चत् यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका मूल आधार ध्रुपद गायकी है। ग्वालियर में ख्याल गायन से पूर्व ध्रुपद ही गाया जाता था एवं उसकी उत्पत्ति भी ग्वालियर के गुणीजनों द्वारा ही की गई। अत: युग परिवर्तन तो होता ही है परन्तु परम्परागत विधाओं के मूल तत्व यदि यथावत् बने रहें तो समाज उन्हें अपनाने में जरा भी संकोच नहीं करता। यही कारण है कि ग्वालियर की ख्याल गायकी में ध्रुपद के पांच (पद, आलाप, गमक, मींड, बोलबांट) तत्वों की प्रधानता के साथ-साथ टप्पा गायकी के तीन तत्वों (पद, तान, पल्टे) का समावेश पूर्ण रूप से दिखाई देता है। ये तत्व इतने घुलमिल गये हैं कि इन्हें अलग करके समझना कठिन है। विशेष उल्लेखनीय तथ्य ये हैं कि ग्वालियर के गुणीजनों ने ठुमरी, दादरा को कभी मान्यता नहीं दी। इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिये कि ग्वालियर के गुणीजन ठुमरी, दादरा नहीं गा सकते। सत्यता तो ये है ग्वालियर के गुणीजन ठुमरी, दादरा भी उतनी ही कुशलता से गाते हैं परन्तु सार्वजनिक रूप से परम्परा का निर्वाह ही करते हैं। इसके विपरीत टप्पा को गुणीजनों ने खुलेमन से अपनाया एवं उसे मान्यता दी। साथ ही साथ उसकी बंदिशों का संग्रह कर स्वरलिपि के माध्यम से सुरक्षित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ग्वालियर के गुणीजनों ने अपनी परम्परा (ध्रुपद गायकी) को स्थाई रखते हुये उसमें टप्पा गायकी का इस प्रकार समावेश किया कि एक नई गायकी अष्टांग ख्याल गायकी का उदय हुआ। इस गायकी का संगीत जगत पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा एवं पता भी नहीं चला कि ध्रुपद कहाँ चला गया। वर्तमान में इसलिये ध्रुपद के उत्थान के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसके साथ ही गुणीजनों ने अष्टांग गायकी का प्रचार-प्रसार भी परोक्ष रूप से परन्तु खुलेमन से किया। अपने शिष्यों को हरसंभव सहायता देकर संगीत शिक्षा दी। गुणीजनों का उद्‌देश्य मात्र विद्यादान या अर्थोपार्जन नहीं। चूँकि शासन से पूर्ण सम्मान एवं सुरक्षा प्राप्त थी इसीलिये विद्यादान में कोई कोताही नहीं बरती गई। इसका परिणाम यह सामने आया कि भारतवर्ष के प्रत्येक स्थान पर ग्वालियर के गायक मिलेंगे जो अपनी विद्यादान की प्रवृत्ति को यथावत् बनाये हुये हैं।

इस सम्पूर्ण निष्कर्ष की पृष्ठभूमि में गायन महर्षि आदरणीय पंडित कृष्णराव शंकर पंडित की परोक्ष शिक्षा का प्रभाव ही है जिसने मुझे अष्टांग गायकी के अध्ययन के लिये प्रेरित किया। साररूप में कहा जाये तो सर्वांग ख्याल गायकी ही अष्टांग गायकी है। ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी सर्वांग ख्याल गायकी है। इसीलिये इसे अष्टांग गायकी कहा जाता है। अन्य घरानों में जो ख्याल गायकी है उसमें लालित्य, माधुर्य, आनंद होता है परन्तु सभी आठ अंगों का सामानुपातिक संतुलन नहीं होता। अपनी-अपनी अभिरुचियों, सीमाओं और स्वभाव के अनुरूप किन्हीं पक्षों का प्राधान्य और किन्हीं पक्षों की न्यूनता होती है, जबकि ग्वालियर गायकी में यह अंग सामानुपातिक रूप में पाये जाते हैं। गुणीजन इसे खिचड़ी भले ही कह लें परन्तु यह बड़ी स्वादिष्ट है जो सरलता से संगीत जगत के गले उतर गई एवं पच भी गई। मैंने अष्टांग गायकी को यथासंभव स्पष्ट कर संगीत जगत के सामने रखा है। मेरा प्रयास है कि इस संदर्भ में प्रचलित सभी भ्रांतियाँ एवं रहस्य समाप्त हो जावें एवं अष्टांग गायकी संगीत जगत के लिये सुलभ हो जावे।

- 97-आनन्द भवन, सर्वधर्म 'सी' सेक्टर, कोलार रोड, भोपाल
मो. 09425673106

■

आलेख

दिया- भारतीय संस्कृति का बेजोड़ प्रतीक

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव

दिया, दीप अथवा दीपक भारतीय संस्कृति का बेजोड़ प्रतीक है। यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। जन्म से लेकर परलोक-गमन तक दिया हमारा साथ नहीं छोड़ता है। सौरिगृह में दीपक नितान्त आवश्यक है। वह नवजात शिशु की काली दुष्ट आत्माओं से रक्षा करता है। छठी के दिन सौरिगृह से बाहर आने पर जिस चौक में बैठी अपनी माँ की गोद में बालक परिवारजनों के बीच पहली बार दिलाया जाता है, उस अनुष्ठान में दिया का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। फिर चाहे नामकरण संस्कार हो, चूड़ाकर्म, विवाह-मण्डप हो या कोहबर, दिया सर्वत्र उपस्थित रहता है। इसी प्रकार दिवंगत हो जाने पर भी उसके अन्तिम संस्कार में दीप का जलाया जाना आवश्यक है, अनिवार्य है।

ऐसा क्या है इस दिये में कि यह हमारे जीवन के पग-पग पर हमारे साथ जलता चलता है? शायद हमारे मार्ग को आलोकित करता रहता है ताकि हमें कोई ठोकर न लगे। यानी दिया प्रकाश देता है और प्रकाश से अन्धकार दूर भागता है। अंधकार चाहे मार्ग का हो, घर का हो या मन का। उस अंधकार को दिया सर्वत्र दूर कर देता है। मन का अंधकार क्या है? मन का अंधकार यानी अज्ञान-उहापोह। अज्ञान को मिटाता है ज्ञान। ज्ञान ही तो प्रकाश है। हम घर में बैठे हैं, रात का अंधकार है। कमरे में रखी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती है। यानी कमरे में रखी वस्तुएँ अज्ञान के अंधकार से ढँकी हैं, इसीलिए दृष्टिगत नहीं होतीं। एक नन्हा सा दिया जलाते ही अज्ञान-अंधकार गायब, हर वस्तु अपने स्वरूप में दृष्टव्य हो जाती है। स्पष्ट है कि हमें अज्ञान नहीं ज्ञान चाहिए, अंधकार नहीं प्रकाश चाहिए। तभी तो हमारे ऋषियों ने कामना की थी- 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् अंधकार की ओर नहीं प्रकाश की ओर हमें ले चलो।

मन का अंधकार क्या है? मनुष्य के शरीर में एक आत्मा भी रहती है। शरीर नाना प्रकार की विषय-वासनाओं की ओर भटकता है, किन्तु आत्मा उसे हर गलत कदम पर रोकती है। सच कहा जाए तो आत्मा ही प्राण-तत्व है। वही प्रकाश प्रदान करती है। मनुष्य के मन में उठे हुए ऊहापोह को आत्मा ही सुलझाकर श्रेय मार्ग प्रशस्त करती है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि शरीर यदि मन्दिर है तो उसके भीतर की आत्मा उस मन्दिर का दिया है। दिये से ही मन्दिर का निराकार देव साकार हो उठता है।

दिये का अस्तित्व तेल और बाती से है। अंधकार अथवा अज्ञान से संघर्षशील दिये के साथी हैं तेल और बाती। सच यह है कि दिये का प्रकाश तभी फैलता है जब तेल और बाती जल-जलकर अपना अस्तित्व मिटाते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि दिया, तेल और बाती ये तीनों मिलकर ही दिये का जलना सार्थक बनाते हैं। इस प्रकार दीपक या दिया हमें एकता और सहयोग का पाठ पढ़ाता है। जब तक हम सब (दिया) धागे जैसी एकता (बाती) और पारस्परिक स्नेह (तेल) से एकाकार नहीं होते तब तक न हम अंधकार को जीत सकते हैं न अज्ञान को।

अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण दिया हमारे जीवन में आदि से अन्त तक जुड़ा हुआ है। किन्तु आज दिये का महत्व केवल दीपावली की अँधेरी अमावस्या में लक्ष्मी-गणेश के पूजन तक ही सीमित रह गया है। बिजली के झिलमिलाते रंग-बिरंगी नन्हें-नन्हें बल्बों ने दिये को अप्रासंगिक-सा बना दिया है। आज की अधुनातन जीवन-पद्धति में एक 'बर्थ-डे' का अवसर ऐसा है जब हम दिये की स्थानापन्न मोमबत्तियाँ जलाते हैं। ध्यान दें मोमबत्ती में तीन (दिया, तेल और बाती) के स्थान पर केवल दो ही साथी (मोम और बत्ती) रह जाते हैं। किन्तु बर्थ-डे की मोमबत्तियाँ क्षण भर के लिए जलाई जाती हैं और फिर तत्काल बुझा दी जाती हैं। उनके बुझते ही एकत्र समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। तालियों की गड़गड़ाहट और 'हैप्पी बर्थडे टु यू' के मधुर स्वर गूँज उठते हैं। मैं आज तक यह नहीं समझ पाया कि मोमबत्तियाँ बुझाई क्यों जाती हैं। इस परम्परा से ऐसा लगता है कि बर्थ डे मनाने वालों को प्रकाश से नहीं अन्धकार से प्रेम है। भारतीय लोक-परम्परा में दिया बुझाया नहीं बढ़ाया जाता है। रात में सोते समय दिया बुझाया तो जाता है किनतु 'बुझाना' कहा नहीं जाता है। 'बुझाना' अशुभ शब्द है। 'बढ़ाना' शब्द शुभ है, वृद्धि-संवृद्धि का सूचक है। एक बात और, मुँह से फूँककर दिया बढ़ाना (बुझाना) हमारी भारतीय परम्परा के विपरीत है। दिये की ज्योति पवित्र मानी गई है, वह अग्नि और प्रकाश का पुंज है। फूँकने से थूक की छींट दिये पर जाने की

संभावना रहती है। इसीलिए पंखे अथवा कपड़े की हवा से उसे बढ़ाया जाता है। घर में महिलाएँ अपने आँचल से दिये को बुझाती थीं। अस्तु, दिया भारतीय संस्कृति का एक बेजोड़ प्रतीक है।

लक्ष्मी सबकी है, समूचे राष्ट्र की है

लक्ष्मी भारतीय संस्कृति और मनीषा का विलक्षण प्रतीक है। वह धन-संपदा के साथ-साथ निर्मलता और अनासक्ति का उपदेश भी देती है। भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य विद्वानों, समीक्षकों और इतिहासवेत्ताओं ने ठीक से समझा नहीं। उन्हें भारतीय संस्कृति में केवल आध्यात्मिकता दिखाई दी। पुण्य कमाने और परलोक सँवारने के लिए भारतीय जीवन में केवल त्याग, तपस्या, वैराग्य और निवृत्तिमार्ग को ही उन्होंने पहचाना। पर ऐसा है नहीं। भारतीय संस्कृति भौतिकता ओर आध्यात्मिकता का बेजोड़ समाहार है। समाज के चार वर्ण, जीवन के चार आश्रम और उनमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति के सच्चे परिचायक हैं। इनसे भारतीय जीवन में जितना महत्व भौतिकता का उजागर होता है उतना ही आध्यात्मिकता का। वैश्य वर्ण, गृहस्थ आश्रम और अर्थ एवं पुरुषार्थ जितनी प्रखरता से भौतिक सम्पदा के उपार्जन एवं उसके उपभोग के साक्षी हैं, शायद ही विश्व की किसी अन्य संस्कृति से इसकी समता की जा सके। इसी प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण, ब्रह्मचर्य और सन्यास आश्रम तथा धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ तप और त्याग भरे आध्यात्मिक जीवन के पक्षधर हैं। अस्तु भारतीय संस्कृति भौतिकता और आध्यात्मिकता का सुन्दर समन्वयात्मक स्वरूप प्रस्तुत करती है और इसी समन्वयात्मक स्परूप का प्रांजल प्रतीक है लक्ष्मी।

लक्ष्मी धन की देवी है। बौद्ध ग्रंथ अभिधान प्रदीपिका में उसे सम्पत्ति और सम्पदा की देवी कहा गया है। सागर-मंथन के फलस्वरूप निकले चौदह रत्नों में से एक रत्न लक्ष्मी भी थी। तभी उसे सागर तनया कहा जाता है। लक्ष्मी (यानी धन) के सागर में उत्पन्न होने वाले पौराणिक आख्यान के पीछे संभवत: एक ऐतिहासिक तथ्य छिपा जान पड़ता है। प्राचीनकाल में जहाज- जैसी बड़ी-बड़ी नौकाओं में भारतीय सामग्री भरकर व्यापारी सागर-पार सुवर्णद्वीप (सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो, बर्मा आदि) जाते थे और वहाँ अपना माल बेचकर अपनी नौकाओं में सोने के सिक्के भर-भरकर वापस आते थे। सोने से भरी नौकाओं को सागर से निकलते देखकर शायद धन की देवी लक्ष्मी के सागर से उत्पन्न होने का रूपक सार्थक बन बैठा। सोना-चाँदी जहाँ से लाई जाती थी उसे इसीलिए सुवर्णद्वीप की संज्ञा मिली थी।

धन और सम्पदा की पर्याय हैं अष्टनिधियाँ। इनके स्वामी थे धनदेव कुबेर। ये अष्टनिधियाँ पद्मिनीविद्या की आधार बताई गई हैं और लक्ष्मी को पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री देवी माना गया है-

'पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मी तस्याऽधिदेवता' (मार्कण्डेय पुराण)। महाभारत में शायद इसीलिए लक्ष्मी को 'कुबेरप्रिया' कहा गया है। इस दृष्टि से लक्ष्मी का धन की देवी होना तर्कसंगत जान पड़ता है। सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद् में उसे 'पुष्टिर्धनदा धनेश्वरी' कहकर उसका धनदेवी स्वरूप स्पष्ट किया गया है। त्रिपुरारहस्य नामक ग्रंथ में लक्ष्मी को 'निधिनाथा' 'निधिप्रदा' बताया गया है। विष्णु धर्मोतर पुराण में लक्ष्मी को स्नान कराने वाले गजों को शंख तथा पद्म निधियों के रूप में देखा गया था- **'हस्तिद्वयं विजानीहि शंखपद्मावुभौनिधि'**। समरांगणसूत्रधार नामक ग्रंथ में इसके रचनाकार महाराज भोजराज परमार ने लक्ष्मी को शंख और पद्म जैसी उज्जवल निधियों के अनुरूप बनाने का निर्देश दिया है- **'निधयश्चानुरूपाश्च शंखाब्जोज्ज्वललक्षणा'**।

श्री और लक्ष्मी विष्णु की दो पत्नियाँ थीं। यहाँ श्री का तात्पर्य श्रिया यानी सरस्वती से है और लक्ष्मी का तात्पर्य भूदेवी से है। श्रीसूक्त में लक्ष्मी को 'भूमि की प्रिय सखी' कह गया है। प्रात:स्मरण में भू (पृथिवी) देवी का विष्णु-पत्नी के रूप में स्तवन इस दृष्टि से विचारणीय है- **'समुद्रवसने देवि, पर्वतस्तनमण्डले/ विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व में'** अर्थत् 'समुद्र ही जिनके वस्त्र हैं और पर्वत जिनके स्तनमण्डल हैं ऐसी हैं विष्णुपत्नि! मेरे पादस्पर्श के लिए मुझे क्षमा करना'। यह विष्णुपत्नी भूदेवी ही है। भू यानी पृथिवी ही नाना प्रकार के धन-धान्य उत्पन्न करती है, उसी के गर्भ में रत्नों की खानें छिपी हैं, वही संसार के प्राणियों को धारण करके 'धरा' कहलाती है। पृथिवी पर ही उत्पन्न अन्न, जल, कन्द, मूल, फल आदि खाकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं। तभी तो श्रीसूक्त उसे 'सकल भुवन माता' और अथर्ववेद 'माता पृथिवी' कहता है। अस्तु पृथिवीरूपी लक्ष्मी ही धन-धान्य और सुख-सम्पन्नता की देवी है।

किन्तु धनदेवी लक्ष्मी का स्वरूप उज्जवल है। वह काले धन की देवी नहीं है। कितना आश्चर्य है कि लक्ष्मी के पूजन का जितना

आडम्बरपूर्ण आयोजन काले धन के स्वामी करते हैं उतना उज्ज्वल लक्ष्मी के उपासक नहीं करते हैं, कर भी नहीं सकते हैं।

तेसकुण जातक में राजा के सन्दर्भ में कहा गया है कि जो कुसंग, असत्य, क्रोध, ईर्ष्या तथा लोभ से मुक्त नहीं होता है तथा असावधान और अधर्मी होता है, लक्ष्मी उसका साथ छोड़ देती है। राजा के साथ-साथ यह उक्ति सभी पर सामान्य रूप से चरितार्थ की जा सकती है। अर्थात् लक्ष्मी की पूजा मात्र धन के उपार्जन में नहीं, धन के सदुपयोग में निहित है। दान, सहायता, परोपकार के माध्यम से धन का सदुपयोग नितांत संभव है। धन स्वार्थ से काला और परार्थ से उजला होता है। कहा भी गया है कि नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीती हैं, वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते हैं, बादल भी अपने लिए वर्षा नहीं करते हैं। वस्तुत: सज्जनों के पास जो कुछ भी होता है वह परोपकार के लिए होता है-

पिबन्ति नद्य: स्वयमेव नोदकं, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षा:।
धाराधरो वर्षति नात्महेतवे, परोपकाराय सतां विभूतय:।।

यही है भारतीय त्याग और तप का आदर्श, यही है आध्यात्मिकता का स्वरूप।

यही बात लक्ष्मी समझाती है। लक्ष्मी का स्वरूप स्पष्ट करता है कि हम धन कमाएँ, खूब कमाएँ, लेकिन सच्चाई के रास्ते से कमाएँ, किसी का गला काटकर नहीं, किसी को ठगकर नहीं। धनदेवी लक्ष्मी का आसन है पद्म।

और पद्म सौंदर्य तथा सृजन के साथ-साथ अनासक्ति और निर्मलता का भी प्रतीक है। पद्मदल पर उसी जल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जिस जल में पद्म आकण्ठ डूबा रहता है। पारे की नाईं जल की बूँदें पद्मदल पर गोल-गोल पारे की तरह तिरती रहती है और लुढ़क जाती हैं। पद्म हमें संसार में रहते हुए भी सांसारिकता से ऊपर उठने का संदेश देता है। ऐसे निर्मल और आसक्ति से अछूते पद्म पर बैठी लक्ष्मी भला और क्या उपदेश देगी। जिस प्रकार वह अपने भक्तों पर धन-सम्पदा की वर्षा करती है, उसी प्रकार उन भक्तों से भी वह अपेक्षा करती है कि वे उस धन को समाज के, राष्ट्र के दीन-दुखियों की भलाई में लगाएँ। जिस प्रकार बहता हुआ जल स्वच्छ और रुका हुआ गन्दा हो जाता है, ठीक उसी प्रकार सत्कर्म में लगाया गया धन पुण्य की और गाड़कर रखा गया काला धन पाप की कमाई करता है। गाँधी जी इसी विचारधारा के कारण पूँजीपतियों को 'ट्रस्टी' कहा करते थे। उनके पास एकत्र धन उनका नहीं समाज का है, समूचे राष्ट्र का है। यही अभिप्राय व्यक्त होता है जगज्जननी लक्ष्मी के पावन स्वरूप से। यानी लक्ष्मी सबकी है, समूचे राष्ट्र की है।

- 1-बी, स्ट्रीट 24, सेक्टर 9, भिलाई-490009 (छ.ग.)

स्व. उमावल्लभ षडंगी भाषा-संस्कृति साहित्य सम्मान - 2018

आज राष्ट्रभाषा हिन्दी दिवस पर मैं डॉ. (श्रीमती) बिनय षडंगी राजाराम ओड़िया भाषा-संस्कृति केन्द्रित अन्तर-प्रादेशिक सौहार्द्र-सेतू सम्मान की घोषणा करती हूँ। यह सम्मान ''सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन-शोध पीठ भोपाल'' की ओर से उसकी संस्थापक-निदेशक मेरे द्वारा प्रदेय होगा, जिसकी राशि रू. 50 हजार होगी।

यह सम्मान गांधी और काका कालेलकर से प्रेरित राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमी भुवनेश्वर निवासी ओड़िया भाषी, शासकीय प्राथमिक शाला के प्रधान अध्यापक, मेरे बाल्यकाल में ही दिवंगत मेरे पिता श्री उमावल्लभ षडंगी की स्मृति में होगा। उनकी इच्छा थी कि मैं उनकी पुत्री हिन्दी भाषाध्ययन को एक मिशन की तरह अपनाते हुए अपना कार्य करूँ जो मैने विदेश तक निभाया।

ओड़िशा के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बिजूपटनायक ने ओड़िशा को हिन्दी प्रांतों से जोड़ने के उद्देश्य से प्रदेश के मेधावी छात्र-छात्राओं के लिए एक 'शिक्षा-योजना' प्रारंभ की थी, जिसके तहत प्रादेशिक स्तर पर मेरा चयन हुआ था। कक्षा छ: से लेकर हिन्दी में एम.ए. तक की संपूर्ण शिक्षा स्त्री-शिक्षा के लिए प्रसिद्ध गांधीवादी संस्था वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान में मैंने पूर्ण की थी।

अपने पिता की इच्छा तथा जन्म-प्रदेश के ऋण को सम्मानित करने हेतु 'ओड़िया एवं हिन्दी के सेतु स्वरूप मेरे द्वारा यह ''स्व. उमावल्लभ षड़गी भाषा- संस्कृति साहित्यालोचना सम्मान'' प्रदान किए जाने की विनम्र घोषणा है। **- विनय, भोपाल**

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आलेख

संगीतः सन्दर्भ गीत का

वीरेन्द्र आस्तिक

सामान्यतः जब कोई व्यक्ति गुनगुनाता है तो यह मान लिया जाता है कि उसके कण्ठ में स्वर का वास है। गुनगुनाना मनुष्य की प्रकृति है। संगीत-कला के बारे में कुछ जानना एक अलग तथ्य है, किन्तु बिना जाने ही प्रायः लोग गा लेते हैं और सुर-ताल में गा लेते हैं। हमारे यहाँ रामायण या आल्हा आदि को गा कर पढ़ने की परम्परा बहुत पुरानी है। मनुष्य का यह गा लेना ही एक सबूत है कि उसको अनजाने में ही लय आदि का बोध हो गया होता है। यह एक नैसर्गिक क्रिया है। शायद मनुष्य क यह लय-सुरधर्मी स्वभाव उतना ही पुराना है जितना स्वयं मनुष्य। वैदिक संस्कृति एक समृद्ध संस्कृति थी। वेदों में वेद को पढ़ने वाले को उद्गाता कहा गया है। भारत में वैदिक काल से राग-रागिनियों में बद्ध कर गीत-काव्य की न केवल अभिव्यक्ति की गई, अपितु उसे गाया भी जाता रहा है। श्लोकों को सस्वर पढ़ने की परम्परा के अलावा मेरा ऐसा भी मानना है कि मानवों में संगीत की अभिरुचि वैदिक युग से भी पुरानी है।

यहाँ अपने बारे में यह बताना आवश्यक है कि मैं कोई संगीतज्ञ नहीं हूँ और न कोई गायक। किन्तु जन्म से मुझे एक बहुमूल्य चीज़ मिली हुई है, वो है मेरा कण्ठ, किन्तु यहाँ भी स्वर को साधने की बजाय मैं शब्द को ही साधता रहा। अतएव गीतकवि होने के नाते स्वाध्याय से जो थोड़ा-बहुत अनुभव जुटा पाया, संगीत से उसमें और निखार आता गया है। यही दो बातें हैं जो इस आलेख की निर्मिति में सहायक हुई हैं। शायद मैं अपने सीमित अनुभवों की वजह से वह सब न कह पाया जो गीत-संगीत के बारे में कहना चाह रहा था।

जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ- गीतकारों में प्रारम्भिक अवस्था में ही लयात्मक स्वर की एक ऐसी शक्ति आ जाती है जो उनकी अभिव्यक्ति की सभी मुश्किलों को आसान कर देती है। छन्द और स्वर का अटूट रिश्ता है। इस तथ्य से रचनाकार और गायक अनभिज्ञ नहीं रह सकते। ललित कलाओं के क्षेत्र में परस्पर अनुभवों की आवाजाही से ही साधना में प्रौढ़ता आती है। ललित आलोचक डॉ. सुरेश गौतम का तो यहाँ तक मानना है कि बाहरी जगत में भी छन्दों की परिव्याप्ति है। उन्हें कोई लयधर्मी मन ही खोज पाता है। रचनाकार का लयधर्मी मन हमेशा व्यथित-व्याकुल रहता है। क्योंकि मनुष्येतर जीवों के विभिन्न लयों-सुरों से जो भाव संचार उद्दीपित होता है, उससे भी वह समरस होने में प्रयत्नशील रहता है। संगीत के ऐसे महत्व के अनुभव मानव जीवन में आदिकाल से किए गए हैं। इसके अलावा जैसे-जैसे साधक स्वर, गेयता, गति, यति, ताल, मात्रा, गण और वर्ण आदि के बारे में जानने लगते हैं, उनकी कला उतनी ही परिपक्वता की ओर अग्रसर होती है।

छन्दों को न केवल जानना बल्कि पढ़ना भी एक कला है। छन्द को पढ़ने का एक स्वरात्मक (आरोह-अवरोह का) लहजा होता है। मेरे विचार से छन्द को केवल गणों या मात्रा आदि के आधार पर जान लेना एक अधूरा ज्ञान है, बात तब बनती है जब उसको किसी विशेष लय या धुन के द्वारा भी साध लिया जाए।

गायकी तो कंठ से ही होती है, कंठ के बारे में कहा जाता है कि वह तो ईश्वर की देन है। जो गीत कवि तरन्नुम में काव्य-पाठ करते हैं उन्हें स्वरों के आरोह-अवरोह या सरगम आदि की प्रारम्भिक अनुभूति तो होती ही है। वैसे स्वर को पहचानने में वाद्य यंत्र बड़ी मदद करते हैं, जिनके सहारे सही स्वर का उच्चारण किया जा सकता है या उसे पहचाना जा सकता है। अनेक गीत-कवियों के गीतों को संगीतबद्ध करना इसलिए सुविधाजनक रहता है, क्योंकि वे स्वर-ताल में कविता करने में पारंगत होते हैं।

संगीत एक स्वायत्त विधा है। संस्कृत में ध्वनि को भी शब्द कहा गया है। ध्वनि की गतिमानता स्वर या लय में बदल जाती है। इसी प्रकार स्वर ही अक्षर का वाहन होता है। इस दृष्टि से संगीत में किसी भाषा की लिपि से अधिक महत्वपूर्ण है स्वर-विज्ञान। वैसे संगीत में गीत निहित है, जो प्रत्यक्ष है। जिसका भाव यही है कि गीत और संगीत अन्योन्याश्रित हैं। गीत का सीधा-सा अर्थ है-जो गाया जा सके उसे गीत कहते हैं। हालांकि उक्त प्रकार की अवधारणाएं छायावादोत्तर काल के बाद दरकती गई हैं। सन् 1960 के बाद या नवगीत के प्रादुर्भाव के बाद से बहुत-से नवगीतकारों ने नवगीत को कुछ इस तरह से परिभाषित किया, जैसे नवगीत के लिए संगीत-तत्व अनिवार्य नहीं है। यद्यपि उन लोगों ने 'नाद' तत्व को ज्यादा महत्व दिया। गौर किया जाए तो नाद तत्व भी संगीत का ही एक विशेष तत्व है बल्कि कहना तो यह चाहिए कि संगीत-साधना की अन्तिम और अशेष कसौटी तो 'नाद' ही है। यानि अनहद नाद। इन ऊहापोहों के अलावा अधिकांश नवगीतकारों और गीतकारों ने गीत-नवगीत को तरन्नुम में ही पढ़ने की शैली अपनाई।

पूरी हिन्दी पट्टी क्या पूरा भारत गीत बहुल है। बहुत से वरिष्ठ गीत कवि-कवयित्रियां तो किवदंती बन चुके हैं। कानपुर तो छन्दों और गीतो का गढ़ रहा है। बहुत-से रचनाकार तो कानपुर की धरती से ही विख्यात हुए- नीरज, रमानाथ अवस्थी, रामस्वरूप सिन्दूर, उपेन्द्र जी,

शिव बहादुर सिंह भदौरिया, माधवीलता शुक्ल, शतदल आदि ने हिन्दी गीत-गान का जो इतिहास रच दिया है, उसकी चर्चा हमारा श्रोता समाज आज भी करता है। इन गीत-ऋषियों से हमारी पीढ़ी ने भी बहुत कुछ सीखा है-शिव कुमार सिंह कुँवर, विनोद श्रीवास्तव, सत्य प्रकाश शर्मा, अंसार कम्बरी, अंजनी सरीन, प्रमोद तिवारी, हरीलाल मिलन आदि अनेक गीत-गज़ल कवि हैं जिनकी रचना को और पाठ अदायगी को विशाल श्रोता-समूह पसंद करता है।

रचनाकार में स्वाध्याय और संगति करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। इससे रचनात्मकता और व्यक्तित्व पर अप्रत्याशित प्रभाव सकारात्मक रूप से पड़ता है। मैने अपने जीवन में कई वरिष्ठ गीतकारों का सान्निध्य-लाभ उठाया है। प्रसंगात यहां हिन्दी गीत के जिन दो साधकों का स्मरण करना चाहूँगा, उनका प्रभाव मेरे गीत-जीवन पर यथेष्ट पड़ा है। वे हैं डॉ. उपेन्द्र और वीरेन्द्र मिश्र। इन दोनों वरिष्ठ गीतकारों का साहित्यिक संघर्ष गीत धारा को समृद्ध करने में कम नहीं रहा है।

उन दिनों भाई साहब (डॉ. उपेन्द्र) के निवास (बिरहाना रोड स्थित) पर अक्सर जाया करता था, गीत चर्चा के उद्देश्य से। एक दिन बातों-बातों में उन्होंने एक गीत सुनना चाहा। मैंने प्रसन्नता जाहिर की और एक गीत का चयन भी कर लिया, गीत था- ''कल आना था आज हो गया, क्या संध्या भी हो जाएगी ? फूलों में मकरन्द कसे ही रजनीगन्धा सो जाएगी।'' उन्होंने तन्मय होकर मुझे सुना। वे मेरे पाठ की अदायगी पर मंत्रमुग्ध थे। थोड़े से भावुक हुए फिर हमेशा की तरह उन्हें बच्चन जी (हरिवंश राय बच्चन) याद आ गए। मुझे मालूम था- बच्चन जी का आशीर्वाद भाई साहब पर हमेशा बरसता रहा था। उस दिन उन्होनें जो बताया उसे क्या कभी भूल सकता हूँ, बोले-बच्चन जी कहा करते थे- ''काव्य का पाठ करना उसे ही आता है जो पाठ करते समय खुद को भूल जाए, अर्थात् ऐसे गाओ कि गायक न बचे, गीत ही रह जाए। दूसरी बात-गीत की धुन उसकी विषयवस्तु के अनुरूप ही होनी चाहिए। तुम्हारे काव्य पाठ से मुझे यह आभास हो रहा है कि तुम्हें गीत की विषय-वस्तु के आधार पर धुन बनानी आती है। संगीत की समझ होने के कारण तुम धुनें अच्छी निकाल लेते हो। नीरज जी को देखो, बहुत डूब कर पढ़ते हैं किन्तु धुन उनकी सभी गीतों के लिए एक ही है- वही सदाबहार धुन !'' दरअसल अर्थ में लालित्य तभी आता है जब शब्दों और सुरों में संयमित मैत्री हो।'' मैं थोड़ा प्रश्नाकुल हुआ तो उन्होंने और स्पष्ट किया- अर्थात् गीतकार को खुद पर भरोसा होना चाहिए कि उसे किस शब्द को मंद स्वर में और किस शब्द को तीव्र स्वर में पढ़ना है। यहां तक कि किस पंक्ति का पुनर्पाठ हो, कहां पर ठहराव लाया जाए या किस भाव का नाट्यकरण हो। इन सब का अभ्यास एक गीतकार को कर लेना चाहिए। थोड़ा रूक कर उन्होंने एक रहस्य की बात और जोड़ी- ''गीत और श्रोता के बीच तादात्म्य का कारण केवल गीत का भावार्थ नहीं बल्कि गीतकार के कण्ठ का मार्दव भी होता है। यह मार्दव ही भावार्थ को और घनीभूत कर देता है।''

उपेन्द्र जी के ऐसे अनुभवों को कौन नहीं गाँठ में बाँधना चाहेगा।उनके सूत्र-कथन की गम्भीरता पर विचार करते हुए मैंने अनेक गीतकारों की पाठशैली पर विचार किया-रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्र मिश्र, सिन्दूर, माहेश्वर, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, किशन सरोज, भारत भूषण आदि को काव्य पाठ करते हुए मैने खुद देखा-सुना था। दरअसल जब गीतकार सामने हो तब दृष्य और श्रव्य की समाहुति श्रोताओं को रोमांचित करती है और वहाँ साधारणीकरण का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत हो जाता है। ऐसे ही साधना स्थल पर माँ सरस्वती का अवतरण होता है और श्रोतागण दुनिया को भूल कर गीत-संगीत के वातावरण में डूब जाते हैं।

ऐसे ही जब कभी वीरेन्द्र मिश्र के नवगीतों से गुजरना हुआ तो लगा जैसे मैं मधुमती भूमिका में पहुँच गया। मिश्र जी के नवगीतों में 'जैजवन्ती' 'वागेश्री', 'मधुवन्ती' जैसे शब्द केवल प्रयोग के लिए नहीं, बल्कि इन शब्दों के द्वारा उन्होंने राग और वर्तमान समय के द्वन्द्वात्मक संबंधों को अभिव्यक्त किया है। यहां उनके बहुचर्चित नवगीत (जो कृति का शीर्षक भी है)- 'झुलसा है छायानट धूप में, पर चर्चा प्रसंगानुकूल रहेगी। पहले इस नवगीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

रातों के सरगम को क्या पता
झुलसा है छायानट धूप में
वह बैठक, वह संगत राग की
पंचम की बंदिश वह है कहाँ/डूब गई महफ्लि
जाने कब गमक कहाँ खो गई
मौन जुगलबंदी इस राज की/ऊब गई महफिल
छाया नट सड़कों पर झूमता
महानगर हँसता द्रुत लय में गुजरी आसावरी
और बढ़ी गरमहाट धूप में

छायानट का प्रादुर्भाव कल्याण थाट से माना जाता है, जिसके गायन का समय रात का पहला प्रहर है। यह राग कई विशेषताओं के कारण अधिक कर्णप्रिय है। रात का संस्पर्श पाकर तो माधुर्य और भी बढ़ जाता है। मिश्र जी ने 'रातों के सरगम' कह कर शायद इसी तरफ संकेत किया है। उन्होंने छायानट को एक व्यक्ति के रूप में भी देखा है। वे कहना चाहते हैं कि अब कलाकार उपेक्षित होते जा रहे हैं। कला-मूल्यों की महनीयता पहले जैसी नहीं रह गई है। इस विरोधाभास से जीवन के बहुमूल्य प्रसंग समाप्त होते जा रहे हैं। अब न तो पहले जैसी बैठकें, न वो संगत और न पंचम की बंदिशें ही कहीं दिखती हैं। अर्थात् जीवन की जुगलबन्दी में ऊबन ही ऊबन भर गई है। यहाँ तक कि आसावरी जो प्रात:कालीन राग है। जिसकी गति धीरे-धीरे (विलम्बित) शुरू होनी चाहिए, किन्तु ऐसा लगता है जैसे सूरज तीव्र गति से दुपहर की ओर बढ़ता जा रहा है। वीरेन्द्र मिश्र के ऐसे गीतों से एक तो उनकी मौलिक दृष्टि का पता चलता है, दूसरे उन्होंने संगीत-क्षेत्र के उपकरणों का प्रयोग करके गीत-सर्जना को नया आयाम दिया है। ऐसे गीतों से एक अन्य प्रश्न उठता है- क्या आज गीत-नवगीत जिन्दगी

की लय से तालबद्ध है? कहना चाहूँगा कि नवगीतों में लोकधुनों का प्रचलन तो खूब है किन्तु संगीत में जैसे लोकधुनों और 'क्लासिकल' की जुगलबन्दी की जीवन्तता देखने को मिलती है या जैसे संगीताचार्य कुमार गंधर्व ने कुछ प्रयोग किए हैं, वैसे प्रयोग शब्दों की दुनिया में अभी नहीं हुए।

गीत-संगीत की एकप्राणता पर बात करते हुए, दुनिया के परिदृश्य पर भी ध्यान जाता है। वैचारिक स्तर पर भले ही दुनिया की आधुनिक सभ्यताएं या उनकी विसंगतिपूर्ण समस्याएं एक जैसी न हों, किन्तु उनसे निःसृत होती भावनाओं में कोई अन्तर नहीं है। इससे तो यही पता चलता है कि दुनिया भर के लोगों का एक जातीय संस्कार है गीत-संगीत। इतना सब कुछ होते हुए भी यह विडम्बना ही है कि हम वैमनस्यता और नफ़रत की लड़ाई में उलझे रहते हैं। विडम्बना का दूसरा पहलू यह है कि भारत एक गीत-संगीत प्रधान देश है। गीत-संगीत को भारतीय लोक का हृदय कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। यह एक सचाई है। लेकिन इस सचाई का भी दुर्भाग्य देखिए- गीत-संगीत हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा में नहीं, हाशिए पर है।

- एल-60, गंगा विहार, कानपुर-208010 (उ.प्र.)
मो.: 9415474755

दिल्ली में बनारस

पं. भोलानाथ प्रसन्ना बनारस घरानें के श्रेष्ठ बांसुरी वादक और गुरु थे। पं. हरिप्रसाद चौरसिया जैसे लोगों ने उनसे सीखा है, और इसीलिये गुरु भोलानाथ प्रसन्ना म्यूजिक उत्सव के अवसर पर वे मुंबई से दिल्ली विशेष रुप से पधारे थे। उद्घाटन के लिये पं. चौरसिया के साथ-साथ पं. बिरजू महाराज की भी भव्य उपस्थिति थी। कार्यक्रम का शुभारंभ पं. अजय प्रसन्ना के सुमधुर बांसुरी वादन से हुआ। अजय कार्यक्रम के आयोजक भी थे। लेकिन, अजय ने दोनों मोर्चो पर अपनी सफलता सिद्ध की। उनके कार्यक्रम के समय कमानी सभागार पूरी तरह भरा हुआ था। अजय एक सफल बांसुरी वादक होने के साथ-साथ बहुत ही अच्छे संगीत संयोजक और निर्देशक भी हैं। उनकी वे सुरीली परिकल्पनायें आज उनके वादन में मुखरित हो रहीं थीं। उनकी फूंक बहुत अच्छी है.... लंबी श्वांस का काम भी वे सफलतापूर्वक करते हैं, और गायन में जो 'पुकार' होती है उसे भी वे बांसुरी पर उतारतें हैं। 9 मात्रा और फिर द्रुत एकताल में निबद्ध अपनी दोनों गतों में उन्होंने बहुत ही अच्छा वादन किया। उनके वादन में बनारस अंग की विशेषतायें मुखरित हो रही थीं। तबले पर बनारस घरानें के शुभ महाराज थे। बड़े मुंह के तबले पर 9 मात्रा में उन्होंने पखावज अंग से सधी हुई संगत की। अजय ने बाद में पीलू में अपने पिता की एक मार्मिक धुन और फिर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को स्मरण करते हुए उनके प्रिय भजन-रघुपति राघव राजाराम का भी सुरीला वादन किया। इस समय शुभ के हाथों में छोटे मुंह का तबला था। उनकी थिरकती अंगुलियों और लग्गी-लड़ी का कमाल श्रवणीय था।

समारोह का समापन पं. विश्वमोहन भट्ट, सलिल भट्ट और रामकुमार मिश्र की त्रिवेणी से हुआ। भेजी ने राग मारुबिहाग की स्वप्निल परिकल्पनाओं से परिपूर्ण अवतारणा की। यह उनका अत्यन्त प्रिय राग भी है। उनका सुरीला वादन सही अर्थो में सम्मोहक था। सलिल का (सात्विकवीणा) वादन चमत्कृत करने वाला था। भावपूर्ण आलाप और संक्षिप्त जोड़ के बाद विलंबित त्रिताल में गत आरंभ होते ही रामकुमार मिश्र ने अपने शानदार बनारसी उठान से लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। तीनों ही कलाकार काफी तैयार हैं और विश्वमोहन जी ने तो जैसे उम्र को काफी पीछे छोड़ दिया है। एक-के-बाद एक करके जब तीनों कलाकारों ने अपनी प्रस्तुतियां, रचनायें शुरु कीं तो सभागार में उत्साह का वातावरण व्याप्त हो गया। स्वर और लय की चमत्कारिक प्रस्तुतियों के कारण तालियां थमने का नाम नहीं ले रही थीं। एक से एक कठिन तानों और धारदार तिहाइयों ने लोगों को खूब आकर्षित किया। द्रुत त्रिताल में रामकुमार की खड़ी अंगुली का नाधिंधंना प्रशंसनीय था। आज विश्वमोहन का सम्मोहन लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा था। स्वर और लय दोनों पर अद्भुत पकड़ है उनकी। सलिल और रामकुमार की रोमांचक जुगलबंदी भी खूब पसंद की गई। लगभग डेढ़ घंटे तक इन तीनों कलाकारों ने सैकड़ो श्रोताओं को स्वर और लय के सम्मोहन से सम्मोहित किये रखा। इस आयोजन का एक दुर्बल पक्ष कमानी सभागार की ध्वनि व्यवस्था रही। जिसके कारण सलिल भट्ट को काफी देर तक अपना वादन रोकना पड़ा था और रामकुमार को जोर से बजाना पड़ रहा था। जबकि, कमानी अपनी उत्तम ध्वनि व्यवस्था के लिये विख्यात है।

रपट -पंडित विजयशंकर मिश्र

आलेख

अपनी माटी, संस्कारों तथा संस्कृति की सुरभी बिखेरता एक अलहदा चित्रकार -ईश्वरी रावल

संदीप राशिनकर

मालवा की भूमि से निकलकर राष्ट्रीय-अंतर्राष्टीय कला परिदृश्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले चित्रकार है ईश्वरी रावल। सन् 1982 में कालिदास अकादमी के नव निर्मित भवन का पहला एवं महत्वपूर्ण आयोजन था 'वर्णागम' कला शिविर। इस शिविर में अकादमी द्वारा चयनित सात महत्वपूर्ण कलाकारों को कालिदास के साहित्य पर आधारित चित्रों के सृजन के लिए आमंत्रित किया गया था। सर्वश्री डी.जे. जोशी, एल.एस. राजपूत, विष्णु चिंचालकर, विष्णू श्रीधर वाकणकर, मंजूषा गांगूली, प्रमोद गणपत्ये जैसे नामचिन चित्रकारों की फेहरिस्त में उस समय जिस युवा चित्रकार को शामिल किया गया था वे ईश्वरी रावल थे। इसी महत्वाकांक्षी कला समागम को 'दैनिक भास्कर' के लिए कव्हर करते समय प्रथम ही ईश्वरी रावल से मेरी मुलाकात हुई थी।

'वर्णागम' की इन्हीं स्वर्णिम स्मृतियों के परिप्रेक्ष में गत दिनों ईश्वरी रावल से न सिर्फ मुलाकात हुई वरन् कला, वर्तमान कला परिदृष्य व उसके सरोकारों को लेकर एक लंबी चर्चा भी हुई। अपने शुरुआती दौर में अमूर्त शैली में चित्र रचने वाले ईश्वरी ने अपनी कला यात्रा को न सिर्फ रिलिस्टिक वर्क की ओर मोड़ा वरन् इस शैली में अपने नए मुहावरों को गढ़ते हुए एक विशिष्ट पहचान स्थापित की। युवा कलाकारों द्वारा अमूर्त शैली में किए जा रहे अंधाधुंध कामों के बारे में उनका कहना है कि बिना सोच बिना किसी ठोस प्रयोजन के लिए किया गया अमूर्तन सिर्फ अर्थहीन ही नहीं वरन् कला-मानकों से खिलवाड़ है। वे मानते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकि के विस्तार के चलते हालांकि नए कलाकारों ने तकनीकी स्तर पर अपने कामों में बेहतर प्रयोग किये है। जहां तक तकनीक का प्रश्न है आज की कला पहिले से काफी प्रयोगधर्मी एवं समृद्ध हुई है। किंतु जहां तक कलाकृतियों की विषयवस्तु/कंटेंट का प्रश्न है निश्चित ही उसमें गहन सोच या दृष्टि का अभाव नजर आता है। ये बात आज के सभी कलाकारों पर नहीं पर हां अधिकांश कलाकारों के संदर्भ में प्रासंगिक है। उनका मानना है कि समय के साथ परिवर्तनवादी दौर में अब कलाओं में भी अमूर्त से मूर्त की ओर रूझान बढ़ता जा रहा है। वे कहते हैं कि मूर्त से समुचित साक्षात्कार के बिना अमूर्त की बात करना हास्यास्पद है।

सृजन को एक स्पान्टिनियस प्रक्रिया मानने के बरक्स् ईश्वरी मानते हैं कि सृजन एक सतत् प्रक्रिया है जिसमें परिवेश के निरीक्षण / आकलन, चिंतन एवं सृजन की निरंतरता ही अंतत: कलाकृति के रूप में सृजित होती है। वे कहते हैं कि 'मूड' असक्षम रचनाकारों का बहाना मात्र है। चित्र सृजन की प्रक्रिया को सीमित अवधि, सीमित साँचे में या सीमित प्रयासों में नहीं बांधा जा सकता क्योंकि चित्रों में चित्रकार के बचपन से लेकर चित्र सृजन तक के जीवन के अनुभवों, निरीक्षण वृत्ति, चिंतन एवं सरोकारों के अक्स् प्रतिबिंबित होते हैं।

कला में आधुनिकता के मुहावरे और उसकी अपनी सुविधानुसार व्याख्याओं के प्रश्न पर स्पष्टता से ईश्वरी कहते हैं कि आधुनिकता न तो मेरे लिए सुविधा है या न हीं असुविधा। वे मानते हैं कि विचार सुविधा नहीं असुविधा पैदा करते हैं। यह असुविधा, यही

बेचैनी तो सृजन को सशक्त एवं सार्थक बनाती है। वे आधुनिकता को परंपरा के परिप्रेक्ष में ही देखते हैं। तभी वे कहते हैं कि आप राजा रवि वर्मा को या किसी भी महान यथार्थवादी चित्रकार को गाली देकर आधुनिक नहीं हो सकते क्योंकि परंपरा के मूल्य 'देश' और 'काल' से ऊपर होते हैं। उन्हें विश्व दृष्टि से देखना पड़ता है। ऐसी चिरंतनता को वही समझ पाता है जो सच्चे अर्थों में आधुनिक है।

चित्रों में कथ्य और चिंतन की महत्ता का पुरजोर समर्थन करते हुए ईश्वरी कहते हैं कि बिना इसके सिर्फ तकनीक, पोतों और रंगों से चित्रों को गढ़ना याने श्वास रहित सुसज्जित पुतलों का सृजन करना है जिसमें जीवन तत्व अर्थात कंटेंट की आत्मा अनुपस्थित है। कला के आधुनिक परिप्रेक्ष में कथ्य और चिंतन के प्रति अधिकांश चित्रकारों की उदासीनता उन्हें न सिर्फ आहत करती है वरन् वे मानते हैं कि इससे चित्रों और दर्शकों के बीच एक संवादहीनता की स्थिति निर्मित हो रही है।

कला के व्यावसायीकरण और उस पर बढ़ते बाजार के प्रभावों के बारे में वे स्पष्ट मानते हैं कि व्यावसायीकरण व बाजार सिर्फ कला ही नहीं हर क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। इससे निस्पृह रह पाना न तो संभव है और न ही उचित। पर हां बाजार की मांग, शर्तों और प्रतिस्पर्धा के चलते कलामूल्यों में गिरावट न तो स्वीकार है और न ही योग्य है क्योंकि कला अभिव्यक्ति का एक सर्वकालिक, सशक्त, सार्थक एवं समर्थ माध्यम है। प्रारंभ में अमूर्त शैली में सार्थक सृजन करने वाले ईश्वरी ने समय के साथ न सिर्फ मूर्त शैली के चित्रों में अपना एक मौलिक मुहावरा गढ़ा वरन् उनकी स्त्री, बचपन संबंधित श्रृंखलाओं ने कला रसिकों को अभिभूत किया। उनके चित्र अपनी तकनीक, विशिष्टता, चिंतन एवं कला सामर्थ्य से कला परिदृश्य में अपनी विशिष्ट पहचान बना कर दर्शकों को प्रभावित करते हैं।

कला उनके लिए जीवन है तभी तो वे हर समय कला सृजन एवं सरोकारों के प्रति समर्पित हो सृजन में रत् रहते हैं। उनकी इस साधना का ही परिणाम है कि उन्हें कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से न सिर्फ नवाजा गया है वरन् उनके चित्र कई महत्वपूर्ण प्रतिष्ठानों, कला विथिकाओं एवं व्यक्तिगत संग्रहों में अपनी सुरभी बिखेर रहे हैं। कला परिदृश्य में अपनी मौलिक शैली के निर्माण व कला रसिकों में उसकी स्वीकार्यता उनके सार्थक रचनाकर्म की गवाही देती है प्रदेश और देश की सीमाओं से परे ईश्वरी ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी कला प्रतिभा से अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

अपनी भूमि, अपने संस्कार एवं अपनी संस्कृति में रचा बसा यह कलाकार अपनी कला दृष्टि, मौलिकता व अभिनव सृजन से न सिर्फ अपनी विशिष्ट छवि गढ़ता है वरन् उसकी कलाकृतियां देश-विदेश में अपनी मिट्टी की सौंधी खुशबू बिखेरने में कामयाब होता है। सिर्फ कला सृजन ही नहीं वरन् कला सरोकारों के प्रति भी पूरे गांभिर्य से समर्पित यह कलाकार अपनी सृजनधर्मिता, मौलिकता से कला रसिकों को यूं ही सरोबार करता रहे यही शुभकामनाएँ।

-11 बी, राजेन्द्र नगर, इंदौर-452012(म.प्र.)
मो. 9425314422/8085359770

रूपांकन कला तिराहा : अर्वाचीन मध्यप्रदेश

नेत्रगोचर कला इतिहास प्रस्तोता : प्रो. राजाराम, कलाकर्मी-आलोचक

''**घुड़सवार छत्रपति शिवाजी**'', निसर्गवादी धातु शिल्पाकृति
(जैविक आकार): आर.के.फड़के
शिवाजी पार्क, देवास

बड़नगर की बोहरानियाँ, स्वदेशी आलंकारिक
लघुचित्र शैली में टेम्परा भित्तिचित्र (8''×10''):
श्रेणिक जैन, पुराना शाला भवन इंदौर

''**छदंत हाथी**'', स्वदेशी आलंकारिक शैली सिमेंट शिल्पाकृति
(जैविक आकार): रुद्रहंजी
पद्मा कन्या विद्यालय प्रांगण, ग्वालियर

''**प्रेरणा भाव:सम्पूर्ण रघुवंश**'', स्वदेशी आलंकारिक
शैली टेम्परा लघुचित्र (10×25 सेंमी.):
रेडक्रास सोसाइटी, कोलकाता, राजाराम

स्वदेशी प्रवाह : पारंपरिक भारतीय आलंकारकि कला
विदेशी प्रवाह : पाश्चात्य निसर्गवादी कला
अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह : आधुनिक कला

'चंबल देवी', स्वदेशी आलंकारिक शैली में कंक्रीट प्रतिमा (30 फुट ऊँची): राम सुतार म.प्र. में चम्बल नदी के गांधीसागर बाँध पर स्थित 1961 में स्थापित

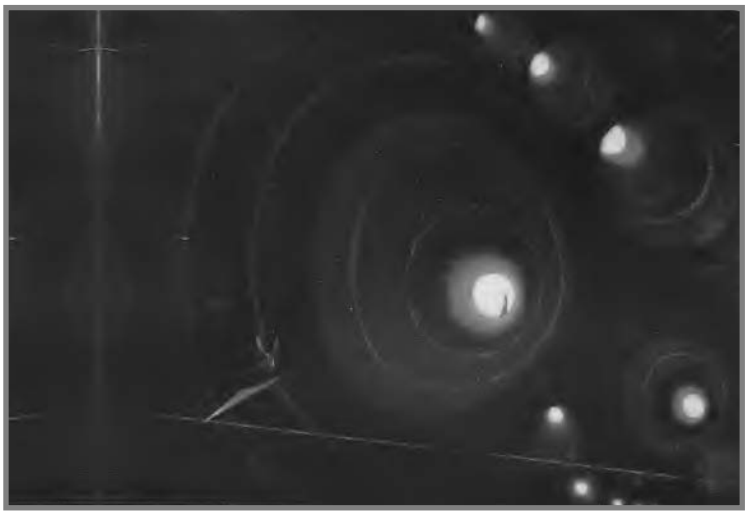

'राग देसी में ख़याल - पं.ओंकारनाथ ठाकुर की गायकी (25-5-1976)', संगीत आधारित आधुनिक 'आवां-गार्द'- प्रयोग तैलचित्र (30''×22''): राजाराम

''प्रतिभा-पर्ण'', आधुनिक मिश्रित धातु भित्तिअलंकरण शिल्प रिलीफ (90×30 फुट): रमेश नूतन, नूतन (सरोजिनी नायडू) कन्या महाविद्यालय, भोपाल

''बिनय और मिटठू'' आधुनिक प्रभाववादी तैलचित्र (22''×30''): राजाराम

विश्व कविता

सुविख्यात रुसी कवयित्री वेरा पावलोवा की कुछ कविताएं

अपनी कविता पर बात रखते करते हुए एक जगह उन्होंने लिखा है – ''मैं अपनी कविता में शब्द रखती हूं ठीक वैसे ही जैसे किसी यात्रा पर जाने से पहले सूटकेस तैयार करती हूँ, सिर्फ वही रखती हूं जो बहुत जरूरी, आकर्षक, हल्का और सर्वाधिक सघन हो ''.....(**वेरा पावलोवा**)

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

दिल

मैंने तुम्हारा दिल तोड़ा
अब नंगे पाँव
चलती हूँ
नुकीले टुकड़ों पर ।

शब्द

यह जो शब्द है 'हाँ'
इतना छोटा क्यों है ?
इसे तो होना चाहिए सबसे लंबा ,
सबसे कठोर ,
ताकि एक झटके में
निर्णय न ले सकें इसे कहने में ,
ताकि इस पर विचार करते हुए
आप रुक जाएँ
इस कहते कहते बीच में ।

मनोहर काजल

प्रेम

प्रेम के बाद अस्त व्यस्त :
'' देखो
कमरे की छत
हर तरफ सितारों से भर चुकी है
और सम्भव है
इनमें से किसी एक में
जीवन हो ..... ''

अंधेरे में लाइटर

तुमसे दूर रहते हुए मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा।
दरअसल यह कोई समस्या नहीं ।
एक सिगरेट लेने तुम बाहर निकलोगे
और वापसी पर महसूस करोगे
मैं बूढ़ी हो चुकी हूँ ।
हे ईश्वर, कितना दयनीय ,
थका देने वाला मूक अभिनय है !
अँधेरे में लाइटर की एक क्लिक,
एक कश, और मुझसे प्रेम करना ख़त्म ।

स्त्री

एक लड़की सोती है जैसे
वह किसी ख़्वाब में है;
एक स्त्री सोती है जैसे
कल कोई युद्ध शुरू होने वाला है;
एक बूढी स्त्री सोती है जैसे
बहुत हुआ मरते हुए का अभिनय
और मृत्यू उसके करीब से गुजर जायेगी
दूर कहीं नींद की सरहद से ।

भाषा

काश जान पाती कि किस भाषा में
तुम्हारा, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ
अनूदित हुआ है,
काश मैं मूल तक पहुंच पाती ,
शब्दकोश की मदद लेती
यह सुनिश्चित करने के लिए
कि ठीक ढंग से भाव अभिव्यक्त हुआ है
और अनुवादक ने कोई गलती नहीं की है ।

गिरना

गिरा देना
गिरना
इतनी ऊँचाई से
इतने लंबे समय तक
हो सकता है
अब मेरे पास
बहुत वक्त होगा
उड़ना
सीखने के लिए।

राम अधीर के गीत

राम अधीर

जन्म : रामनवमी, 1934, आर्वी, जिला वर्धा (महाराष्ट्र)
प्रमुख कृतियाँ :
सूरज को उत्तर दो, धूप सिरहाने खड़ी है, बूंद की थाती, वह नदी बीमार है। वर्तमान में संकल्प रथ पत्रिका के सम्पादक।
सम्पर्क : 108/1, शिवाजी नगर, भोपाल-462016
मोबा. : 08518090098

मुझे काजल दिया था...

जब कभी मन थक गया, ठोकर लगी या हार बैठा,
तब जुलाहे की रमैनी ने मुझे संबल दिया था
जब सुना उड़ना पड़ेगा।
एक दिन तो देह कांपी।
डूबना चाहा मगर सूखी
पड़ी थी ज्ञान-वापी।।
हां, मुझे मालूम कब था प्यास की कीमत चुकाना,
किन्तु, यह सच है किसी ने कंठ को बदल दिया था।
था, अकेला पर लगा ऐसे कि
जैसे हाट में हूं।
है, अगर संसार चाकी तो
सुनिश्चित पाट में हूं।
मैं हजारों बार हारा हूं सरल प्रतियोगिता में
क्या, पता किसने मुझे यह ढीठ विंध्याचल दिया था
गंध जो साखी-सबद में थी
कहीं पाई न मैंने।
इसलिए चौपाल पर भी
प्रार्थना गाई न मैंने।
तन निखर आया कि मैंने डुबकियां इतनी लगाई
तब किसी ने मन परखने ज्ञान-गंगाजल दिया था।
हां मुझे भ्रम हो गया था
देख कस्तूरी मृगों को।
और तब संसार को पहचानने
धोया दृगों को।
पुतलियां इतनी हुई उजली कि सब दिखने लगा है,
आंजने को क्या पता किसने मुझे काजल दिया था।

हाँ, यही सूर की आंखे...

ज़िन्दगी जो कल मरुस्थल के यहां मेहमान थी
आज वह मिलकर घटाओं से जलद होने लगी।
जानती है यह किताबों
की तरह खुलना यहां।
और मिश्री की डली बन
देह में घुलना यहाँ।
यह कभी पावस, कभी मधुमास का आभास दे
फाग के संकेत देकर अब शरद होने लगी।
अंजुरी में बंद होना कब
इसे स्वीकार है।
क्योंकि यह मंदाकिनी की
एक चंचल धार है।
यह कभी साखी, सबद बनकर जमातों से मिली
वेद के घर से निकल कर उपनिषद् होने लगी।
हां, यही है सूर की आंखें
यही रसखान है
हां, यही तुलसी, नरोत्तम-
दास की पहचान है।
पी चुकी है यह हजारों बार विष की प्यालियां
बहुत बरसों बाद मीरा कर दरद होने लगी।
सूफियों से और संतों से
इसे कुछ मोह है।
यह सुबह आरोह है, तो
शाम को अवरोह है।
हम इसे संक्षिप्त कहते हैं, इसी से ज़िंदगी
राजशेखर की कथाओं-सी विशद होने लगी।

■

प्रेमशंकर शुक्ल की कविताएँ

प्रेमशंकर शुक्ल

जन्म : 16 मार्च, 1967, रीवा (म.प्र.) के गाँव- गौरी (सुकुलान)

प्रमुख कृतियाँ : कुछ आकाश, झील एक नाव है, पृथ्वी पानी का देश है, भीमबैठका एकान्त की कविता है।

सम्प्रति : भारत भवन की आलोचना पत्रिका 'पूर्वग्रह' के सम्पादक। वर्तमान में भारत भवन, भोपाल के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी।

मोबा. : 09424439467

चित्र का शरीर

चित्र का शरीर है यह
लेकिन चित्रकार के हाथ से फिसल गया है चित्र का चित्त
जैसे कि- राग का रूप तो ला पाया हो संगीतकार
रूह लाने में फूल गयी हो उसकी साँस
कविता के विन्यास भर पर इतरा रहा हो कवि
और कविता की काया में
आत्मा लाने में काँप गए हों उसके हाथ

नृत्य भी देह में रहकर देह से परे हो जाने की साधना है
नाचते हुए जीवन के सारे रस-राग

अपने जीवन में ही अपने को अनुपस्थित कर
मंच पर पात्र का जीवन जीने की कला है नाटक
यदि यह सधा नहीं तो नीरस हो जाता है रंगकर्म

अपने आकार और आत्मा के लिए
कलाएँ बहुत मेहनत माँगती हैं
जैसे अपनी सुगंध को आकार देने में
अपना फूलपन बचाते हुए फूल को जूझना होता है दिनरात

कलाएँ अजीवित का अलंकरण नहीं हैं
रचनाकार की कल्पनाशीलता का पसीना
रचना के आलोक में ही अपने नमक और
नमी के साथ दिखता है !

जलरंग

(प्रख्यात चित्रकार राममनोहर सिन्हा के चित्र देखकर)

दहकती आग पलाश की टहनी पर
फूल की तरह खिल रही है

आग को फूल बना रहे हैं चित्र
आँच में रंग पक्के हो रहे है

नर्मदा में सौन्दर्य बह रहा है
चट्टानें पानी का संगीत पी-पी कर अमर हो गयी हैं
चित्रों में रेवा का प्रवाह बजता है
और खिल उठी हैं स्वर लताएँ

जलरंग में एक भरी-पूरी कायनात उतर आयी है
यहाँ कुछ भी ठस नहीं
सब में धड़क रहा है संसृति का सौन्दर्य
जीवन की खुशबू से दिशाएँ खुल रही हैं

कमलताल में रक्तकमल-श्वेतकमल
सूर्य को निहारते सुगंध का छंद गुनगुना रहे हैं
(पाखी मन को है जिसकी गहरी तलब !)

कागज़ निसर्ग का आँगन हो गया है
रंगों की कनबतियों से
फूल महकते हैं !

रंग-सन्धि

(श्री श्याम मुंशी के लिए)

जुड़ता है हरे में पीला
पीले में लाल
और तितली का पंख बन जाता है

बहुत काले में
उभर पड़ता है सफेद
पूरी निर्मलता के साथ

जामुनी की तो बात ही अलग है
लाल जिह्वा में छोड़ देता है अपनी रंगत

रंग-संगत से ही
पृथ्वी का मन बुना हुआ है
आकाश की कमीज में भी
सारे रंग खिलखिला रहे हैं !

■

सुरेश पबरा 'आकाश' की ग़ज़लें

सुरेश पबरा 'आकाश'

जन्म : 4 जून, 1954
प्रमुख कृति : वो अकेला
सम्प्रति : कादम्बिनी, सारिका, नवनीत, दैनिक भास्कर, देशबन्धु, नव भारत, दैनिक जागरण नर्द दुनिया, अक्षरा, मंगलदीप, आदि पत्र पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित।
सम्पर्क : एच.आई.जी. 61, जे सेक्टर, अयोध्या नगर, भोपाल (म.प्र.) 462041
मोबा. : 09893290590

ये धुआं बदले

जो गलत है वो कारवां बदले
वायु में फैला ये धुआं बदले

जो न बदले कभी भी इक पल को
उनकी इच्छा है ये जहां बदले

हमने निर्धन को ताज पहनाया
उसने बस अपने दिन यहां बदले

आँकड़े झूठे वो बताते हैं
हर घड़ी उनने तो बयां बदले

जा अचानक गरीब बस्ती में
अब बता इनके दिन कहां बदले

बाग तो आज तक नहीं बदला
बाग के सिर्फ बागवां बदले

करें ये जिन्दगी कुर्बान

नहीं हम काम आ पाते किसी के
मगर दुश्मन नहीं है आदमी के

नहीं चर्चा किसी के सदगुणों की
बहुत चर्चे किसी की आशिकी के

जमीं को आसमां से देखते हैं
बहुत छोटे दिखे दुख इस जमीं के

बहुत हम पूजते भगवान को पर
तरीके अलग अपनी बन्दगी के

वही मुंसिफ बना इक मामले में
फसे थे पांव प्रकरण में उसी के

करें ये जिन्दगी कुर्बान उन पर
खुदा ने दे दिये जो पल खुशी के

नहीं शिवका किया

जो किया मन से किया पूरा किया
कुछ अगर डर के किया तो क्या किया

पाई हमने तो सजा हर पाप की
पुण्य का हमने नहीं लेखा किया

हार तो चुपचाप हमने मान ली
पर उसूलों का नहीं सौदा किया

जो मिला हमको पसीने से मिला
हमने किस्मत से नहीं शिकवा किया

फायदा नुकसान कुछ देखा नहीं
सच कहा कोई न समझौता किया

सब नतीजों में हम

रह न पाये कभी भी अजीजों में हम
उम्र भर ही रहे बदतमीजों में हम

यूँ रहे स्वस्थ ही जिन्दगी भर मगर
जब भी गिनती हुई थे मरीजों में हम

खूब खुलकर जिये खूब खुलकर हँसे
पर रहे दायरे की कमीजों में हम

बदतमीजों में चाहे रहे हम मगर
पर रहे थे सदा ही तमीजों में हम

काम जो भी किया पूरे मन से किया
सुर्खियों में रहे सब नतीजों में हम

■

आलेख

लोक संस्कृति के आलोक में संजा (सांझी) पर्व

डॉ. वर्षा नालमें

बालपन की स्मृतियों में कहीं 'संजाबाई या सांझी' के विविध चित्रण, गीत तथा सोलह दिनों तक चलने वाली हंसी ठिठोली थी। मालवा में रहकर मालवी संस्कृति को समझने का प्रयास करना था। सांझी पर लिखना चाहा और जैसे-जैसे सांझी की संस्कृति में डूबती गई तब जाना कि यह केवल मालवा में ही प्रचलित नहीं है वरन् राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र से लेकर विभिन्न राज्यों के विभिन्न लोक रूपों, स्वरूपों में प्रचलित है। पता नहीं देवी तुल्य पार्वती का रूप सांझी कौन थी जिसे प्रत्येक जाति, वर्ण की कुमारियां स्नेह और अपनेपन से पूजती रही हैं। बाद में समझ पायी कि सांझी एक ऐसी लोक संस्कृति की प्रतीक है जो सुखद स्मृतियों के साथ आती हैं और दु:खद अंत की ओर ले जाती हैं।

इस आशय का लोक साहित्य पढ़ा, समझा एवं गुना तथा राजस्थान और मालवा की बुजुर्ग महिलाओं से उनके अनुभव बांटे। तब समझ में आया कि सांझी का उद्भव (जन्म) स्थल राजस्थान में है। इसलिए यहां के चित्रण एवं गीतों में उनका स्वरूप स्पष्ट है।1 जबकि मालवा में यह स्वरूप कल्पित अधिक है। परन्तु मालवा में 'संजाबाई' का ग्रामीण क्षेत्रों में उतना ही महत्व है जितना राजस्थान की लोक संस्कृति में 'सांझी' का।2

विधि शर्मा, अजमेर

सांझी के चन्द्रमा और सूर्य भाई माने जाते हैं।3 विभिन्न राज्यों में इस पर्व को भिन्न-भिन्न नामों से पहचाना और पूजा जाता है।4 जैसे मालवा में 'संजाबाई', महाराष्ट्र में 'गुलाबाई अथवा भूला बाई', निमाड़ में 'संजाबाई', हरियाणा में 'धूंधा' तो गुजरात में 'सांझी' या 'संजा' को पार्वती का रूप माना गया है। इन क्षेत्रों में सांझी को किसी ने ब्राह्मण तो किसी ने निम्न जाति की बालिका माना है। संजा के बारे में कई किवदंतियां एवं गीत प्रचलित हैं,परन्तु आश्चर्य है कि उसकी कोई वार्ता कही नहीं जाती। यह एक ऐसा पर्व है जो बिना वार्ता के पूर्ण मान लिया जाता है। कुछ विद्वानों ने कुछ कथाएं जरूर जोड़ने के प्रयास किये परन्तु वे संध्या से सम्बद्ध हैं जो ब्रह्मा की कन्या मानी गयी है। जबकि इसे (संजा को) लोक परम्परा का अनुष्ठान माना जा सकता है। किन्तु यह तो निश्चित है कि संजा अल्पायु में विवाह होने के पश्चात् सोलह वर्ष की आयु में ही कालकवलित हो गई थी। सम्भवत: यही कारण है कि संजा सोलह श्राद्ध में मनाया जाने वाला लोकपर्व है। प्रथम दिवस से सोलहवें दिवस तक संजा के जीवन का एक-एक वर्ष मानकर सोलहवें दिन उसका विसर्जन शायद अंतिम दिन का प्रतीकात्मक रूप हो5 ?

सांझी कई विसंगतियों के साथ भी कन्याओं के लिये सौभाग्य, सुखी भविष्य और प्रसन्नता के लोकपर्व के रूप में मनायी जाती हैं। समस्त क्षेत्रीय गीतों में सांझी का मायका सांगानेर और ससुराल अजमेर बताया गया है अर्थात् वह राजस्थान से ही सम्बन्धित थी।6

संजा भाद्रपक्ष की पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर अश्विन मास की पितृमोक्ष अमावस्या अर्थात् सोलह दिवसों तक चलने वाला पर्व है जिसे कुंआरी कन्याएं प्रत्येक घर के बाहर दीवार पर गोबर से भित्ति कला चित्रण करके मनाती हैं। पितृपक्ष में श्राद्धकर्म एवं श्रद्धा अनुष्ठान से जुड़ा यह पर्व प्रकृति की सोंधी महक, कलात्मकता एवं विभिन्न प्रतीक चिन्हों के चित्रण आलेखन से जुड़ा होकर रागात्मक, भावनात्मक एवं चुहल मस्ती से भरा है। इसमें सोलह दिनों तक की जाने वाली लोक संस्कृति की ऐसी सच्ची कलाकारी है जिसमें सजावट, गीत गायन, खाना पीना और मिलने बिछुड़ने के भाव है साथ ही सहेलियों के संग अल्हड़ मस्ती भी है।

संजा अथवा सांझी को ब्रह्मा की मानस पुत्री मानी जाने की बात भी बतायी जाती है जो संध्या के समय पूजी जाने के कारण सांझी कहलाई। प्रकृति के अवयव सूर्य, चन्द्रमा, वृक्ष नदी, पर्वत, देवता प्रतिदिन काम करने वाले हरकारे नटिंया और विभिन्न जीवजन्तुओं की आराधना वस्तुत: उनके प्रति मानव जाति द्वारा कृतज्ञता प्रकट करने के भाव हैं।

मालवा में संजा को एक कन्या माना गया है जिसका राक्षस ने अपहरण कर मार दिया था। जिसकी सूचना सोलह दिनों पश्चात् लगती है, अत: इसकी स्मृति में सोलह दिन उसे पूजते हैं।7 जबकि राजस्थान में खोड्या ब्राह्मण की पत्नि (जिसकी अल्पायु में मृत्यु हो गई थी) की स्मृति में भी यह पर्व मनाया जाता है।8 सांझी को बाधजी की पत्नि भी माना जाता है।9 लोकसंस्कृतिविद् महेन्द्र भानावत ने बाधजी

की कथा में इसे आबद्ध भी किया है।

मालवा की संजा का स्वरूपः-

इस पर्व में अविवाहित कन्याएं दीवार पर लिपाई पुताई के पश्चात् गोबर से विभिन्न आकृतियों का चित्रण करती है। पूर्व समय में इसे फूल पत्तियों से सजाते थे। समय परिवर्तन के साथ फूलों के अतिरिक्त रंगबिरंगे कागज पन्नियां आदि से संजा की सजावट की जाने लगी है। जिसकी जितनी सुन्दर सांझी उसकी उतनी ही प्रशंसा के साथ ही विशेष नये प्रसाद का रहस्य एवं पहेली के साथ गीतों भरी संध्या के समय दिया बाती के साथ आरती की जाती है। सांझी को भोग लगाया जाता है। प्रत्येक दिन के अनुसार सांझी के पांच-पांच गीत गाये जाते हैं। ये गीत सांझी को लेकर उसका बचपन, अभिरूचियां, मानमनुहार, श्रृंगार, रहन-सहन, परिवार, संगी सहेलियां, खेल, दैनिक जीवन सम्बन्धी बातों को इंगित करते हुए उसके प्रसंग में गाये जाते हैं। इन गीतों में प्रसन्नता, उल्लास, दुःख, घरेलू परेशानियां, ऊलाहना और विरह सब कुछ समाहित होता है। प्रत्येक दिन का विशेष चित्रण सांझी की विशिष्ठता का गोचर है जिसका अपना निजस्व है।10

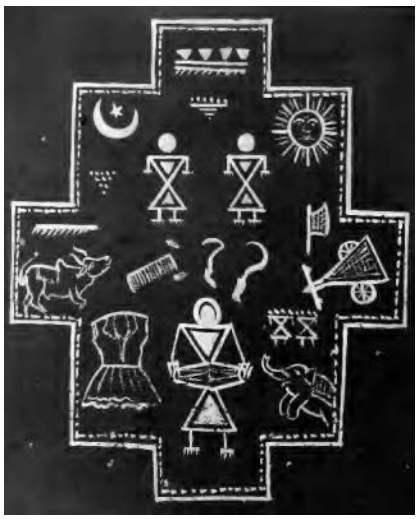

प्रथम दिवस भाद्र पक्ष की पूर्णिमा को पूनम का पाटला बनाया जाता है। कई स्थानों पर 5 पांचे (सितारे) या पचेटे भी बनाये जाते है। इनके साथ ही सूर्य, चन्द्रमा बनाये जाते है। पाटला भगवान सत्यनारायण का प्रतीक होता है तथा सूर्य और चन्द्रमा भाई माने जाते है, जिन्हें प्रतिदिन बनाया जाता है। क्योंकि यह सांझी के दुःख के साथी माने जाते है। सांझी चित्रण को मांडनों एवं फूल पत्तियों से सजाया जाता है। इनमें 5 पांचे (पचेटे) को पंच महाभूत भी माना जाता है। ये क्षिती, जल, पावक, गगन एवं समीर के प्रतीक होते है। इनसे ही मनुष्य का शरीर बनता है।

सांझी जीमले चूठ ले, जिमादू सारी रात।
थनें जीमाऊ सारी रात, चटक चांदनी सी रात
फूलां भरी रे परात।11
एक फूलो जई पड़यों
म्हारी संजा माता रिसई पड़ी।

फिर प्रतिदिन सांझी को भोग लगाते है तथा गीतों के पश्चात् उसकी आरती की जाती है।

चांद सूरज जी वीरो, बटुओ मंगई दो
भई संजा को नीर है
पनघट चलया पानी आये
जल गंगा के नीर है।12

द्वितीय दिवस पर पड़वा के दिन पंखा बनाया जाता है। कहीं-कहीं चार छड़ी, बिजौरा या डोली बनाई जाती है जो मायके के साथ की प्रतीक होती है। दूज के दिन बाजोट का बिजोरा बनाया जाता है। यह ग्रामीण संस्कृति में बीज फसल की समृद्धि का प्रतीक होता है तथा इस दिन निम्न गीत गाया जाता है जो सुख एवं समृद्धि को दर्शाता है।

अतल वतल की तोरया, कई वेतल की तलवार।
कौन सो वीरो बाग लगावें, कौनसी बेन्या सीचन जाये।
चंदा सूरज बाग लगाये, संजा बेन्या सीचन जाये।
संजा बई चाली सासरिये, म्हारो बाग सूखो जाये।13

तृतीय दिवस तीज का होने के कारण इस दिन तिबारी या फल-फूल से भरी छाबड़ी बनाई जाती है। यह दिन सांझी के विवाह को स्मरण करने का भी होता है। इस दिवस पर यह कामना की जाती है कि सांझी का जीवन फूलों की डलिया की तरह हरा-भरा और फूला-फला रहे। इन गीतों में सांझी के वैभव का बखान किया जाता है।

नानी सी (छोटी सी) गाड़ी रूड़कती जाए,
जिमे बैठ्या संजा बाई
घाघरो धमकाता जाए, चुड़िलो चमकाता जाए
नथनी झलकाता जाए, बिछिया बजाता जाए।14

उक्त दिवस के पीछे एक मान्यता यह भी मानी जाती है कि पितृपक्ष में मृतक पूर्वज के अन्तिम बारहवे दिन जो फूल छाबड़ी बनायी जाती है यह स्वर्ग में काम आती है और पूर्वज उसी पर बैठकर कन्याओं को अशीर्वाद देते है।

चतुर्थी का दिवस पारिवारिक बिसात, राजनीति और शहमात का होता है, जो यह दर्शाता है कि परिवार में यदि स्नेह एवं त्याग है तो द्वेष और कलुषता भी रहती है। जीवन में समस्याओं का आना स्वाभाविक क्रिया है। उनको दूर करना तथा उनका समाधान ढूंढना ही समझदारी है। सांझी या संजा के गीतों में रिश्तों एवं सम्बन्धों की गहराई का वर्णन होता है। अल्पायु में हुआ विवाह कितना दुःखद है यह संजा की स्थिति से पता चलता है जो आज खासकर ग्रामीण वातावरण में मनन करने योग्य है। संजा बाई खेलना चाहती है किन्तु उसकी सास उसे घरेलू कार्यो को करने के लिये प्रताड़ित करती है। यह बालविवाह की त्रासदी है, जो मालवा, राजस्थान, निमाड़ जैसी सभी जगह समान है।

म्हारे खेलवा नी दे, सासू पीसनो पीसावे।
म्हारे खेलवा नी दे, सासू लीपनों लीपाये
छोड़ ने जाहू पीहर।15

पंचमी का दिवस ''कुंवारा पंचमी'' कहलाता है। यह दिन

पितरों के नाम का होता है। कहीं-कहीं इसे गौरा (पार्वती) का दिन भी मानते हैं। इस दिवस पर सांझी में पांच कुंआरे और कुंआरियों का चित्रण एंव एक ओर सांझी की सहेलियों का चित्रण होता है। इस प्रसंग में मालवा की लोकगीतकार श्रीमती कुन्ती गाजवा द्वारा बताया गया कि - यह अल्पायु में दिवंगत हुए बालकों की याद में मनाया जाने वाला श्राद्ध दिवस भी होता है। इसके अतिरिक्त इस चित्रण में कहीं पातल, निसरनी, पान आदि भी बनाये जाते हैं।

कागला रे कागला, संजाबाई ने धारे कई-कई
न्यौत जिमायो रे कागला, खीर, पूड़ी, लाप्सी
ऊपर घी की झारी।16 एवं
संजा के घर न्यौते रे कागलो,
काई-काई चीज परोसू रे कागलो।
लाप्सी रा लूदां परोसू रे कागलो
ऊपर घी ओर बूरो रे।17

छठ या षष्ठी के दिवस पर छाबड़ी बनाई जाती। कहीं-कहीं पर्वत, छड़ी सवार, बान्दरवाल आदि भी बनाई जाती है। सौभाग्य की कामना के रूप में फल, मिठाई से भरी डालियां कन्याओं की ससुराल में सुख समृद्धि की कामना की द्योतक है। इस दिवस पर सांझी की आड़ में समस्त कन्याएं स्वयं के भावी जीवन में सुख एवं वैभव की कामना करती है।

संजा बाई के सासरे से, हाथी भी आया
घोड़ा भी आया। झाला भी आया
पालकी भी आई। तम जाओ सासरिये।18

सप्तमी दिवस को श्राद्ध के शोकभरे दिनों में भी सौभाग्य एवं शुभ सूचक चित्रण तथा स्वास्तिक का निर्माण किया जाता है। कहीं-कहीं दोहरा सातियां (स्वास्तिक) एवं निसरनी तथा सहेलियां भी बनाई जाती है। सप्तऋषि भी बनाये जाते हैं। इस दिवस की मान्यता है कि सांझी को लिवाने खोड़या ब्राह्मण आता है। उसे देख सहेलियां सांझी में जो गीत गाती है वे गीत यह दर्शाते हैं कि बालिकाओं को किस प्रकार लालच देकर ससुराल भेजा जाता था।

खोड़या बामण आयो रे, संजा ने लेवा आयो रे।
म्हारी संजा की नाक छोटी सी। नथिनी क्यो नी लायो रे।
म्हारी संजा को गलो छोटो सो। हार क्यो नी लायो रे।
म्हारी संजा.....
लायो थो भई लायो थो, घरे भूल आयो थो।19

अष्टमी के दिवस पर आठ पंखुड़ियों वाला फूल बनाया जाता है जो आठ दिशाओं एवं अष्ठ तीर्थ के साथ-साथ लोकजगत की पौराणिक परम्पराओं का संदेश भी देता है। ऐसे प्रकृति प्रेम का चित्रण करना हमारी प्रकृति के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने का उदात्त उदाहरण है।5

उल्लेखनीय है कि मालवा में इस अष्टमी को ऐरावत हाथी भी बनाया जाता है। जिसके पीछे कौरव-पाण्डवों की आपसी कलह की कथा भी है। यह भी लोककथा है कि हाथी अष्टमी पर कुन्ती माता को ऐरावत हाथी की पूजा करना आवश्यक था। तब कौरव उन्हें पूजा नहीं करने की जिद्द करते है जिससे कुन्ती दु:खी हो जाती है। उसे देखकर भीम गंगा नदी के तट पर रेती एवं मिट्टी से ऐरावत हाथी की आकृति का निर्माण करते है और कुन्ती उसकी पूजा कर अपना व्रत पूर्ण करती है।20 यह कथा हमें इस बात का स्मरण कराती है कि मानव को प्रत्येक परिस्थिति में स्वयं का समायोजन एवं जीवन की असफलताओं एवं संघर्षो का सामना करना आना आवश्यक है। ये दोनों ही बातें प्रकृति के लिये हमारी मानवीय जिम्मेदारी को भी दर्शाती है। अष्टमी के इस अवसर पर कन्याओं का समूह हंसता खिलखिलाता गीत गाता जाता है

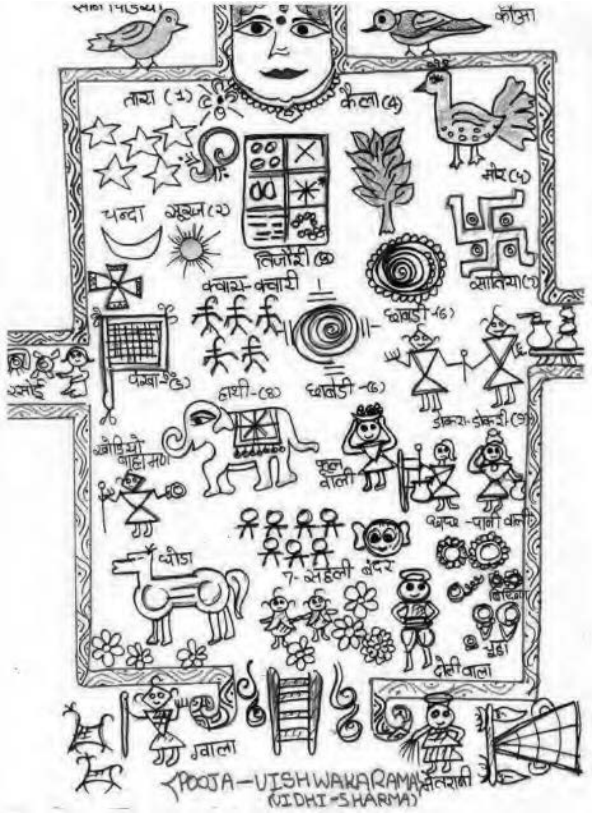

और संजा बाई से कहता है कि - 'समय काफी हो गया अब घर जा। वहां तेरी मां मारेगी।'

संजा तू थारे घरे जा,
के थारी मां मारेगी के कूटेगी
के डेली (देहरी) में दचको देगी
चांद गयो गुजरात।
के हिरणी का बड़ा-बड़ा दांत, के छोरा छोरी डरपेगा।21

श्राद्ध नवमी को मातृ नवमी भी माना जाता है। परिवार में बुजुर्गो का स्थान एवं महत्व कितना अमूल्य है? यह विचारणीय है। पीढ़ियों से चली आ रही परम्पराओं, संस्कारों को हस्तान्तरण करने का

कार्य हमारे त्यौहार एवं लोकपर्व ही करते है। यहीं सांझी का उद्देश्य है। इस दिन सांझी में मातृ-पितृ की स्मृति में बुजुर्गो (डोकरा-डोकरी) का अंकन किया जाता है तथा कहीं-कहीं उल्टे पुतले आदि भी बनाते है। ये सब गोबर, पुष्प जैसे उपादानों से भावपूर्ण अंकन की परम्परा है।

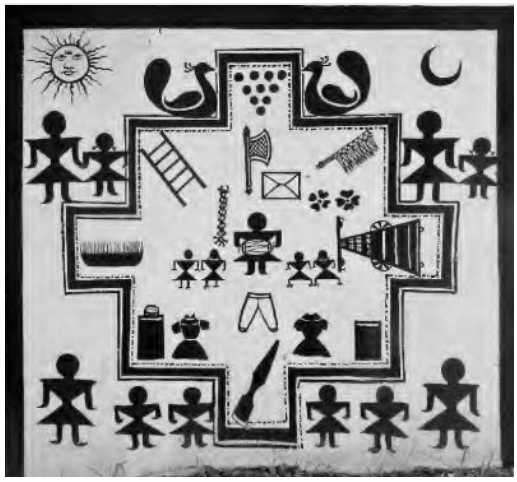

संजा तो मांगे हरो-हरो गोबर
कां से लाउं बई हरो हरो गोबर।22
संजा बाई के जावेगा खाटो
(कड़ी) रोटो खावंगा
संजा बाई की सासू दुतजली।23

दशमी के दिवस पर जलेबी जोड़ी एवं चन्द्र, सूर्य का चित्र बनाया जाता है। यह भाई बहन के अमिट स्नेह और पारिवारिक मिठास को दर्शाता है। कहीं-कहीं खजूर, बिलौना आदि भी बनाते है। संजा या सांझी की प्रशंसा में सखियां गाती है कि तू तो बड़े कुल (खानदान) की है।

संजा वों तू बड़ा बाप की बेटी,
तू खाए खाजा रोटी
तू पेरे माणक मोती
रजवाड़ी चाल चाले, गुजराती बोली बोले
माथे रखड़ो वो, माथे बेवड़ो वो।24

ग्यारस अथवा एकादशी को केले का पौधा या केलवृक्ष की आकृति, कलश या जनोई बनाया जाता है। केले का वृक्ष आज भी पूजनीय है। केले के वृक्षों में व्यक्ति जल चढ़ाते है। ये भी हमारी लोक आस्था एवं धार्मिक विश्वास के प्रतीक है कि वृक्ष, जीव, जल, पर्वत, वायु हमें सुन्दरतम जीवन प्रदान करते हैं। अत: हमें भी उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये।

बारस अथवा द्वादशी को खजूर का वृक्ष एवं मोर-मोरनी बनाये जाते हैं। इसके पश्चात् किलाकोट की तैयारी आरम्भ की जाती है। अभी तक की सांझी प्रतिदिन बनाकर मिटाई जाती है जबकि तेरस से आरम्भ किलाकोट सोलहवें दिन उतारा जाता है।

किलाकोट:- मालवा में कोट या किलेनुमा आकृति बनाकर उसके अन्दर पूर्वोक्त सभी आकृतियां बनाई जाती है। तेरस के दिन चौकोर आकृति से बाहरी दीवारों के रूप में किले का निर्माण किया जाता है। उसके पश्चात् प्रतिदिन उसमें आकृतियों का चित्रण किया जाता है, जो सूर्य, चन्द्रमा, बैलगाड़ी, माला, कंघी, पक्षी, वृक्ष, मिठाईयां, घरेलू कार्य करने वाले, सफाई वाली, छाछ बिलौने वाली, दूध वाली, मालन, ढोली, जाड़ी-जसोदा, पतली-पेमा (मोटी-पतली महिलाएं) आभूषण, खोड़या ब्राह्मण, हाथी, घोड़ा आदि इनके अतिरिक्त कई आवश्यक वस्तुएं जो घरेलू जीवन से जुड़ी है तथा आवश्यक है इन्हीं के साथ जो विवाहिता नारी के जीवन प्रसंगों के साथ जुड़ी है उन्हें भी चित्रित किया जाता है।

किलाकोट का निर्माण तेरस से अमावस्या तक चलता है। किलाकोट से स्पष्ट होता है कि यह शब्द राजवर्ग से सम्बद्ध है। यो भी 16 दिवसों की संजा का पर्व कन्या के जीवन के पूर्णत्व की सूचना देता है, वहीं यह सोलहों कला का भी संकेत देता है। सर्वपितृ अमावस्या के दिन संजा को खीर पूड़ी का भोग लगाकर विदाई दी जाती है। सोलहवें दिन तक के समस्त चित्रण को टोकरी में एकत्र कर नदी में विसर्जित करने के लिये कन्याओं द्वारा ले जाया जाता है। यह विदाई दु:खद, नम आंखों से दु:ख भरे विदा गीत गाते हुए की जाती है। सांझी अगले वर्ष पुन: लौटेगी इसी कामना एवं लोक भावों के साथ कन्याएं प्रसन्नता की अनुभूति करती है।

सांझी राजस्थान के सांगानेर (जयपुर) की रही तथा अजमेर में विवाहित हुई। यह लोक मान्यता प्रबल हो जाती है जब संजा के गीतों का अध्ययन किया जाता है। लोक में संजा के अनेक गीत है उनके स्थान-स्थान पर पाठभेद भी अनेक है। स्थानभेद से उनके बोल एवं शब्दों में अन्तर आता रहता है लेकिन धुन वही रहती है। प्राचीन समय में भी संभवत: जब हम राजस्थान, मध्यप्रदेश अथवा निमाड़ या बुन्देलखण्ड नहीं कहते थे। वस्तुत: बाद में सांझी मेवाड़, हाड़ौती, मारवाड़ी एवं मालवी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में गाये जाने वाले लोक गीतों में समस्त उत्तर मध्य एवं कुछ अन्य क्षेत्रों में इसी गीत को इंगित कर प्रचलित थी।

संजा बाई को सासरियों गढ़ अजमेर,
परण पद्राया सांगानेर।25

ब्राह्मण कन्या, बलाई कन्या, राजपूत कन्या अथवा कोई दैवीय अवतारों में सांझी का सत्य क्या है? यह शोध का विषय है। वह बाधजी की पत्नी थी अथवा खोड़या ब्राह्मण की अथवा अन्य समाज की रही। यह लोकमान्यताएं क्षेत्र परिवर्तन होते ही परिवर्तित हो जाती है। सम्भत: यह सन्दर्भ मध्यकाल की संस्कृति के मालूम होते है। सांझी अल्पायु में विवाहित होकर सोलह वर्ष की आयु में ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। यह लोक किंवदन्ती कई क्षेत्रों में समान भावों से प्रचलित है। उसकी सोलह वर्ष की आयु सोलह दिन में परिपूर्ण होती है और अंतिम दिन अश्रुपूरित विदाई में। परन्तु उसका अंत शुभ नहीं दर्शाता।

म.प्र. में मालवा एवं राजस्थान की संजा एवं सांझी में बहुत सी समानता भी है। लगभग आकृति चित्रण व गीत भावनाएं एवं उनके पीछे छिपे तर्क भी, परन्तु फिर भी सांझी कन्याओं के लिए उनके सुनहरे भविष्य की आराधना है और पूर्वज पूजा का एक रूप भी। 26 सांझी पर्व

के इस पखवाड़े में कन्याएं प्रात: जल्दी उठ जाती है तथा ताजा दूध व पुष्प से पूजन कर सांझी को उतारती है कि यदि कहीं देरी हो गयी तो कौवा बोल उठेगा और सांझी का व्रत टूट जायेगा। इसी डर से कन्याओं में जल्द उठने की परम्परा का निर्वाह होता है और कारण भी यही है कि हमारी लोक संस्कृति में प्रात: की बेला में गोबर पानी का कार्य करना कन्याओं में आज भी इसी लोकपर्व का प्रभाव माना जाता है।

सारत: भारतीय संस्कृति के इस लोकपर्व में ललित कलाओं का सुन्दर समावेश आज भी ग्रामीण अंचलों में दिखायी देता है। देखा जाये तो चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य के साथ-साथ गीत और संगीत जैसी लोकविधाओं के कारण सांझी या संजा का महत्व बहुआयामी है। मालवा एवं राजस्थान में इस लोकोत्सव का सामुख्य अध्ययन करने एवं चर्चा करने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इसके तीन महत्वपूर्ण अंग क्रमश: अनुष्ठानिका आयोजन, भित्ती अलंकरण एवं लोकगीत है।

संजा (सांझी) भारतीय लोककला के आलोक की अप्रतिम धरोहर है। भित्ती अलंकरण की यह कला अबोध बालिका वर्ग का स्पर्श पाकर विकसित मूर्तकला में जीवन्त हो उठती है और इसी से यह हमारे समाज में एक अलग पहचान बनाये हुए है। इस पर्व के गीतों में जोड़-तोड़ कर कन्याएं अपने तौर तरीकों से इसे गाती है। संजा विषय के गीतों में बालरूपी शब्दों के साथ लोक का परिवेश और जीवन शैली की प्रवृति विद्यमान है। यह लोक अनुरंजन का बालिका पर्व है। इस पर्व का उद्देश्य कन्याओं में कला, संस्कार जाग्रत करने और लोक संस्कृति की चेतना विकसित करना है। यह लोक उत्सव कन्या वर्ग में उसके विवाह पूर्व तथा विवाह तक का उत्सव है। संजा (सांझी) के चित्रों में हाथों के उपयोग की आकृति को क्षेपांकन कहा जाता है जबकि इन चित्रों में हाथ की अंगुलियों के पोरों से दीवार पर गोबर के जो टुपके उभारे जाते है उन्हें टुपक पद्धति कहते है। इनमें पंचमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, आदि में टुपक अंकन के क्रम में 5, 7, 8, 9, 10 बिन्दियां लगाई जाती है। से सभी पीली व गेरूएं रंग की गोहली के ऊपर बनायी जाती है। इस प्रकार नारी मन की इन पारम्पारिक पवित्र परिकल्पनाओं को प्रतिबिम्बित करने वाला यह पर्व हमारे देश, क्षेत्र की सुन्दर लोक परम्पराओं को आज भी ग्रामीणों में सहेजे हुए है। इसकी मोहकता का सबसे बड़ा प्रभाव आज भी यह है कि सात समन्दर पार का विदेशी शोधार्थी या पर्यटक हमारे देश की लोक संस्कृति की ग्रामीण जीवनधारा में जब भी यह धरोहर देखता है तो बस देखता ही रह जाता है। यह पद्धति सांझी के आसन को प्रतिष्ठित करने की सूचक है।

शास्त्रीय शैली में संजा का गायन :-

मालवा के कलामर्मज्ञ एवं निबन्धकार नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के अनुसार - प्रख्यात शास्त्रीय गायक कुमार गन्धर्व ने संजा के मालवी गीत अपनी निराली शास्त्रीय शैली में गाए है। जिसमें संजा से उसकी सहेलियां यह आग्रह करती है कि वह अपने ससुराल जाए परन्तु संजा तो अपनी सहेलियों के बीच रहकर ही चुहल करना चाहती है, चाहें उसे लिवाने के लिये ससुराल से हाथी, घोड़ें एवं पालकी, शाल, वस्त्र आए हो। कुमार गंधर्वजी ने पूरा गीत ज्यों का त्यों गाया है।

बाई संजा वो, तमारा सासरियासे,
हाथी भी आया, म्याना भी आई,
पालकी भी आई, छतरी भी आई,
तम जाओं बाई संजा सासरिये।
म्हारा दाऊजी हो, हाती ठाणै बंधाओं,
घोड़ा पागा बंधावों, चंवर घर में धरावों।
म्याना घर में धरावों, पालकी घर में धरावों।
मैं तो नी जाऊं दाऊजी सासरिये।।
बाई संजा वो तमारा, सासरिया से
टीका भी आया, भमर भी आया,
सालू भी आया, लेंगा भी आया,
तब जावे बाई संजा सासरिये।।

संदर्भ :-

1. भानावत महेन्द्र - राजस्थान की संझया, पृ. 7, 1977 ई., भारतीय लोककला ग्रन्थावली, उदयपुर (राज.)
2. श्रीमती कुन्ती गाजवा (आयु 70 वर्ष) निवासी शुजालपुर- (मालवा) से लेखिका द्वारा लिये साक्षात्कार के आधार पर।
3. उपाध्याय नर्मदा प्रसाद - अस्ताचल के सूर्य, पृ. 80, 2006 ई., मेधा बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा कृष्णा-ललित कलाओं का समेकित पर्व(युगवेग-विक्रम विश्वविद्यालय की राज्यस्तरीय स्मारिका में शोध लेख, पृ. 68, 2007 ई., विक्रम विश्वविद्यालय स्वर्ण जयन्ती अंक, उज्जैन (म.प्र.)
5. शुजालपुर एवं उज्जैन की बुजुर्ग गीतकार महिलाओं से लेखिका की लोकचर्चा के आधार पर।
6. भानावत महेन्द्र - पूर्वोक्त (सांझी पूजा - भारतीय साहित्य, वर्ष 2, अंक 5, पृ. 103)
7. प्रो. एम.आर. नालमे (85 वर्ष) शुजालपुर (मालवा) लेखिका के पिता से चर्चा पर।
8. शर्मा उर्मिला - लोक साहित्यकार, (अजमेर निवासी) से प्राप्त जानकारी के आधार पर
9. निगम शशि - लोक परब - संजा, जगर मगर (मालवी सालाना पत्रिका) पृ. 12, 2014 ई. झलक निगम सांस्कृतिक न्यास, उज्जैन (म.प्र.)
10. गौड़ ऊषा (70 वर्ष) अजमेर, श्रीमती जया शर्मा (40 वर्ष) इन्दौर एवं कु. सिद्धि गाजवा (मालवा) द्वारा लेखिका को बतायी गयी जानकारियों के आधार पर।
11. से 19 मालवी एवं राजस्थानी लोक परम्परा के जानकार महिलाओं द्वारा बतायें सांझी गीतों को सुनकर सामुख्य अध्ययन किया गया।
20. शर्मा उर्मिला (अजमेर) एवं डॉ. रत्नज्योत्सना शर्मा (उज्जैन) से प्राप्त जानकारी के अनुसार सांझी पर्व में यह लोककथा भी कही जाती है। इस कथा को उक्त दोनों क्षेत्रों में आज भी सांझी पर्व में मान्यता दी जाती है।
21. से 25 भानावत महेन्द्र - पूर्वोक्त से साभार।
    राजपुरोहित भगवतीलाल - चितरावन (मालवा जनपद की चित्रकला पृ. 172, 179, 180, 2013 ई.) उक्त प्रसिद्ध मालवी विद्वान का मानना है कि सांझी या संजा के प्राय: मालवा और राजस्थान में पचास गीत प्रचलन में आ पाये है। (उक्त पृ. 181) म.प्र. आदिवासी कला परिषद्, भोपाल। इसी क्रम में राजस्थान के प्रख्याात लोक संस्कृतिविद् डॉ. महेन्द्र भानावत ने बड़े परिश्रम से संजा (सांझी) के 47 गीत प्रचलन में दिये है जिनकी विशिष्टता यह है कि साथ ही उनकी स्वरलिपि भी रेखांकित की है (भानावत की पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 57)
26. श्याम परमार - जनधर्म (मालवा विशेषांक) में सांझी पूजा लेख, पृ. 100, 1990 ई. खण्ड-2 जनधर्म प्रकाशन, भोपाल (म.प्र.)
27. उपाध्याय नर्मदा प्रसाद - पूर्वोक्त, पृ. 81
28. पूजा विश्वकर्मा व विधि शर्मा, अजमेर द्वारा बनाये गये सांझी कला के चित्र।

- प्राचार्या - सेन्ट्रल एकेडमी, टी.टी. कॉलेज,
प्रगति नगर कोटड़ा अजमेर (राज.) 305001
मोबा. 09929269650, 08769269650

आलेख

आदिमगंधी यथार्थ कल्पनाओं के रचाव का सुख

डॉ. कहानी भानावत

आदिम गंध की बात करते ही हमारा ध्यान उन आदिवासियों की ओर चला जाता है जो अपनी प्रकृति, परिवेश, परम्परा और पहचान में हमसे भिन्न हैं। वे पूर्णतः प्रकृति से आत्म चैतन्य लिये जंगलवासी, वनवासी जीवन के सुखभोगी हैं। उनका दृढ विश्वास है कि हम सब जीवजगत परम पिता की धडकन हैं। सबसे बडे जीवधारी परमात्मा के पांच तत्व हैं। ये ही पंच जीव हैं। इनमें पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि, और वनस्पति ये सब जीवधारी हैं। इनके बिना हमारा जीना मुश्किल है। हमारी स्वांस एक डोरी की भांति है जो उसके हाथों में है या उसकी स्वांस की धमनी से जुडी है। इसलिए वही सबकुछ हमसे कराता है। हमारा अस्तिव उसके हाथ, उसके साथ है। ऐसी मान्यता वाला आदिम समाज यथार्थवादी जीवन की धारा लिये है। वहां कल्पना नहीं है। हमारी कल्पना जहां नहीं पहुंचती वहां तक बल्कि उससे भी आगे उनका यथार्थ है। हमने देखा ही क्या है। उन्होंने जो देखा, भोगा, छुआ उसकी कल्पना करना भी हमारे नसीब में नहीं है।

इसीलिए उनकी रचना और उनका सृजन कल्पनाजीवी नहीं है। बनावटी और बेबुनियादी नहीं है। उन्होंने पूरे ब्रम्हांड को अपना लोक माना है। उनके जीवनानुभवों में प्रकृति के सारे उपादान उनसे कहीं अधिक वैशिष्ट्य, विचित्र, चमत्कारिक, रहस्यमय और अनोखे अनुपम हैं। इसी भावना के वशीभूत होकर उनके लिए सूरज, चांद, इन्द्र, समुद्र, वृक्ष, हवा सब देवता हैं। ये सारे के सारे हमारे मनुष्य लोक को चलाते हैं जैसे ड्राईवर रेल, मोटर, हवा गाडी चलाता है। मनुष्य तो माध्यम मात्र है।

इसीलिए जब हम आदिवासियों के चित्रांकन की बात करते हैं तो हमें उनके जीवन-लोक को समझना होगा। उनमें यह धारणा है कि मनुष्य को पूर्वजन्म, वर्तमान जीवन और भावी जीवन के घेरे में रहकर धरती पर पसरी चौरासी लाख जीव योनियों से गुजरते हुए जाना-आना है।

यह उस परम शक्ति की खूबी है कि वह हमारा पूर्व-परा ज्ञान भी हमसे छीन लेता है इसीलिए हम पूर्व में क्या थे, जो अभी हैं वे कब तक, कैसे यहां रहेंगे और काया छोडने के बाद हमारा क्या होगा, कुछ भी नहीं जानते। कई रूपों में देवता नानारूप धारण कर धरती पर विचरण करते हैं। हम उन्हें नहीं पहचानते। वे कभी हम जैसे, कभी किसी रूंख रूप में, कभी कोई जानवर रूप में, कभी किसी जड रूप में हमारे सामने होते हैं पर हम उन सबसे अनजान बने रहते हैं। यहां तक कि सपना भी पूरा नहीं देते हैं और देते हैं तो उसका यथार्थ हमसे छीन लेते हैं।

सृष्टि के इन विभिन्न रूपों से जुडे कई कथानक, कई मिथक, कई गावणियां, कई गीत, कई गाथाएं प्रचलित हैं जो संसार की रचना से लेकर उसके फैलाव की बातें कहते हैं इसलिए हर गांव में देवताओं की पूजा, प्रतिष्ठा और उनके आह्वान के लिए गांव वाले पूरे विश्वास और आस्था के साथ मनावण करते हैं, अरदास करते हैं, लुलि-लुलि बारम्बार नमन-वंदन करते हैं। देवता उनकी सुनी को टालते नहीं हैं। उनके शरीर में कंपकंपी, धूजणी देकर अपनी उपस्थिति देते हैं और उनकी हर समस्या का निवारण करते हैं।

यह सब कुछ जो वे जीते हैं, उनकी चित्रकारी के विषय बनते हैं। यह कितनी विस्मयजनक स्थिति है कि वे जो भी चित्र बनाते हैं उसके पीछे लम्बा कथा-बीज है। उदाहरण के लिए सेमल के पेड पर मोर का चित्रांकन ले सकते हैं। इसे देखने पर कोई उत्सुकता नहीं बनती। न इसमें कोई वैशिष्ट्य ही लगता है पर जब उसकी पीठिका को जानने की चेष्टा की जाती है तो रहस्य की गुंडी-दर-गुंडी खुलती जाती है। डॉ. महेन्द्र भानावत ने आदिवासियों के बीच रहकर उनकी चित्रकला पर गहरा अन्वेषण करते लिखा-

सेमल के पेड पर मोर का चित्रांकन। पेड सूखा हुआ। सूखी डालियां। एक भी पत्ता नहीं। किस्सा है कि मोर और मेघ दोनों भाई हैं। दोनों खेलते-खेलते लड पडे। मेघ

बोला-'तेरा जीना हराम कर दूंगा। मैं बरसूंगा तो तेरा जीवन बचा रहेगा।' मोर बोला- 'हेंकडी मत मार। यदि ऐसा ही है तो करके दिखादे।' हार जीत हुई।

मेघ अपनी असलीयत पर आ गया। नाराजगी ली तो बारह बरस तक चुप्पी साधे रहा। बरसा ही नहीं। अकाल पड गया। सब मरने लगे। मोर सेमल की खोखल (तने के छेद) में जा छिपा। सफेद कंकड खाकर जैसे-तैसे समय काटा। बोला- 'मेघ पापी और महा दुष्टि है। सारी नदियां सूख गई हैं। पानी की एक बूंद भी नजर नहीं आती। कितना पाप चढ गया है उस पर।'

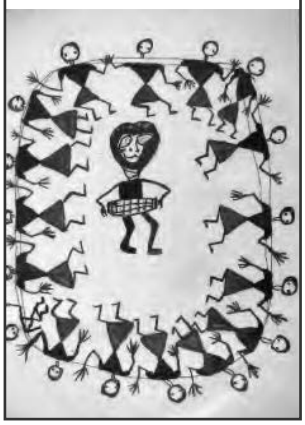

मेघ यह सुन और गुस्से से भर्राया। नहीं बरसा। मोर बोला- 'मैं मरने वाला नहीं। हवा की नमी मुझे जिन्दा रखेगी पर तुझे तो गाली ही देगी।'उसका यह कथन मेघ को लगा। गुस्से में ही सही, वह बरसा और इतना बरसा कि मोर भी शायद बच पाये पर मोर लगातार बोलता रहा- मे हो, मे हो अर्थात् मैं हूं, मैं हूं। कहते हैं अंत में इन्द्र ने अपनी हार मानी। कहा- 'तू बडा मैं छोटा।' तब से मोर आज भी मे हो, मे हो कह अपनी उपस्थिति देता दिखाई दे रहा है। चित्र में मोर पेड से चिपका हुआ है। आसमान काला है यानी मेघ बरस रहा है। मोर का चिपकना अकाल को दृश्यगत करता है। दु:ख का दरसाव। अफसोस और चिंता का दरसाव। सृष्टि के नष्ट होने का अवसाद। घने काले आसमान का दरसाव। मेघ यानी इन्द्र का कोपभाजन होना है।

आदिवासी चित्रांकन में एक फलक ही अनेक रूपों में चित्रित मिलता है। उदाहरण के लिए उनके चित्रों में सांप के अनेक आकार-प्रकार, क्रिया-भाव, रूप-स्वरूप और रंग-ढंग की छवियां मिलती हैं। बैलों के ऐसे रंग-रूप मिलते हैं कि उन्हें देख हमारी कल्पना ही काम नहीं करती पर लाल-पीले, हरे-नीले बैलों का रंग हमारे लिए निरर्थक-व्यर्थ हो सकता है पर उनके विशिष्ट अर्थ हैं। उनके पास पीली सरसों की लहलहाती फसलें हैं। गहरा हरा रंग लिए जानवरों के खाने की हरी घास, रचका है। बालियों से निकाले गेहूं हैं। पेंकडों से निकाली ज्वार है। चने, चंवले जैसे बुदके हैं। मकई जैसी बूंदियां हैं। मूंगफली के दाने हैं। आम है, नीम की निमोली है। सबके रंग जुदा-जुदा हैं।

कहने को एक सर्प के ही कितने रूप उनकी रोजमर्रा की जिंदगी में देखने को मिलते हैं जो हमारे देखने में नहीं आये और न हम उनकी कल्पना ही कर सकते हैं पर उनकी चित्रकारी से ही हमें यह पता चलता है कि उनकी दृष्टि कितनी प्रकृतिमय रंगावलियों के साथ संश्लिष्ट बनी हुई है।

सांपों के कई रूपों में साधारण सांप ही कई तरह के होते हैं फिर देवत्व रूप लिए सांप विशिष्ट और असाधारण स्वरूप लिए होते हैं। शांत स्वभावी सांप, गुस्सेल सांप, जहर उगलते सांप, किल्लोल करते सांप, लघु आकारी सांप, दीर्घ आकारी सांप, सांप-नेवले की लडाई, नेवला द्वारा लहूलुहान होता सांप, पांच एवं सात फणी सांप, बंट खाते सांप, लहर देते सांप, रेंगते सांप, दो मुंही सांप, सीधे तने सांप, क्षमाशील सांप,जीवनेच्छा मांगते सांप, सद्गति चाहते सांप, बदला लेते सांप, मणिधारी सांप, उडने वाले सांप, झपट्टा देते सांप, कंचुकी उतारते सांप, जहर चूसते सांप आदि। लोकदेवता कल्लाजी पंच फणी सर्प के रूप में हैं। पाबूजी, देवनारायणजी, तेजाजी, गोगाजी आदि देवों के सर्प-कथा के कई मिथक प्रचलित हैं। ये सभी सांप अपना स्वतंत्र और अलग अस्तित्व लिए हैं।

ऐसे ही जानवरों के रूप दिखाई देंगे। घने बादलों की ओट में गरजने वाला जीव अपना असली रंग कैसे दिखायेगा। बादलों की ओट में वह कालिमा लिए दृष्टिगत होगा। बरसात की गहन बौछार के रहते भी कोई प्राणी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसे पशु चित्र भी मिलते हैं जो सात रंगों में चित्रित किये हुए हैं। पूछने पर बताया गया कि आकाश के जिस छोर पर इन्द्रधनुष अपने गहरे रंगों में शोभित था उसके बीच लोमडी देखी गई इसीलिए लोमडी वाला चित्र सात रंग लिए है।

कहना नहीं होगा कि प्रकृति के इन सारे उपादानों के बीच आदिवासी भी एक उपादान बन उनके साथ बसेरा कर रहा है इसलिए वह उन सबके साथ एक साथी बना हुआ है। जंगल में वह हिरण की शिकार करते शेर और उनके शावकों, पेंथरों को झपट्टा मारते देखते हैं

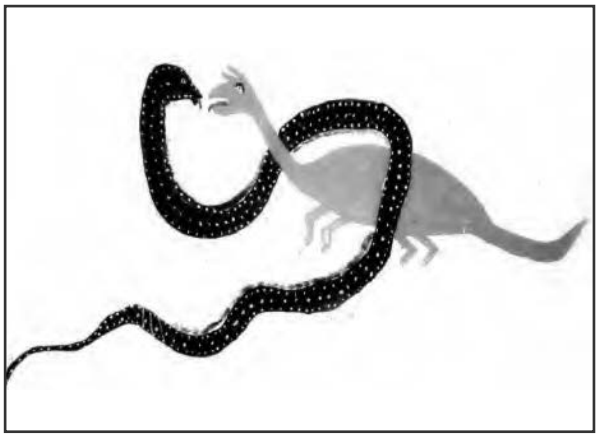

तो पेडों पर वल्लरियों को गले लिपटते-गलबहिया करते भी निहारता है। खेतों में सांप-नेवले की लडाई, सांप-सांप का फनकार, सांप-चूहे की लफूंदराई,गिरगिट की बदलती रंगदारी, चीडा-चीडे की चहक, कोयल की कुहु, मोर द्वारा मेहों का आह्वान, बीजली की कडकडाहट, बादलों की गडगडाहट,पानी का ओटा देता उठाव, अकाल की बेचैनी, अच्छी फसल की आबोहवा, दुधारु पशुओं का रंभाना, घोडा बावसी, काला-गोराजी, चगत्याजी,बांक्याजी, सुला, एलवा, आवरा, अंबाव देवियां, भूत-प्रेत का लोक, सातवें पाताल तक की संरचना, फसली जीव, रामजी का घोडा, घोंघा, केंकडा,गरगलों की पोट, सावन की डोकरी जैसे सैंकडों किस्म के रूप-लावण्य देते और टींटोडी, बया, मोर, कूकडे के अंडों का अंतर आदिवासियों के मन-मस्तिष्क का सनातन शाश्वत संगी है और यह सब उनकी चित्रांकन की रंगीनियों के कूंची-ब्रश से निकलते हैं जो छुईमुई सा स्पर्श देते हैं तो मगरे-मगरियों से कठोर जीवनयापन का संदेश और संकेत भी देते हैं।

मेलों-ठेलों, वार-त्यौहारों अथवा विशिष्ट आनुष्ठानिक अवसरों पर उनके नाच-गान और खुशियों के उल्लास देखते ही बनते हैं। विवाह में दीवालों पर भराडी और गोतरेज के चित्रों में गणेश से लेकर सुरसत माई और लाडा-लाडी के अंकन तथा पेड-पौधों-पत्तों से फूटते पर्यावरणीय सकोरे एक अजीब तरह की खुशबू से सबको रिझाते-हर्षाते लगते हैं। रात-रात भर नाच-गान करते उनकी मादक मस्ती जीवन में ही नहीं चित्रावण में भी छलकाव देती लमछराती है।

– 16, वृंदावन धाम गली नं. 2, न्यू भूपालपुरा, उदयपुर -313001
मो. 9460352480

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक / आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला-संस्कृति के अछूते पहलुओं पर सर्जनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबन्ध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई, अथवा सुवाच्य लिपि में अंकित हों। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेज सकते हैं।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें।

-संपादक

पुस्तक समीक्षा

कला को समर्पित: झालावाड़ की मूर्तिकला परम्परा

डॉ. उर्मिला शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक इतिहासकार ललित शर्मा द्वारा लिखित है। लेखक ने इस पुस्तक में अपने क्षेत्र के हर धर्म की मूर्तियों का गम्भीरता से शिल्प शास्त्रीय अध्ययन कर उन्हें भारतीय मूर्तिकला में पूरे प्रमाणों तथा मौलिक चिन्तन के साथ आकर्षक चित्रों सहित श्रमसाध्य तरीके से प्रस्तुत करने की कोशिश की है जो उसकी भारतीय कला संस्कृति के प्रति सच्ची आराधना मानी जा सकती है।

विवेच्य पुस्तक को लेखक ने नौ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में वर्णित देवी-देवताओं से सम्बन्धित मंगलाचरण के रूप में विद्वान लेखक ने पुराणोक्त महत्व के सुन्दर श्लोक दिये है, वहीं उन्होंने उसी अध्याय में वर्णित मूर्ति विवरण के अन्त में उनके चित्र के क्रमांक भी रेखांकित कर दिये हैं, जिन्हें पढ़कर मूर्तियों के रंगीन चित्रों का अध्ययन किया जा सके।

प्रथम अध्याय में मूर्तिकला के उद्भव एवं विस्तार पर पौराणिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों के प्रकाश में सविस्तृत चर्चा की गयी है। देशभर से प्राप्त प्रमुख मूर्तियों के वर्णन के साथ ही लेखक ने राजस्थान की मूर्तिकला पर सारगर्भित सामग्री प्रस्तुत करते हुए पहले हाड़ौती मालवा भू-भाग की तथा अंत में झालावाड़ भू-भाग की मूर्तियों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। इसमें लेखक ने झालावाड़ के संग्रहालय और स्थानीय मन्दिरों में स्थापित मूर्तियों का ही नहीं, वरन् उन्होंने स्वयं विवेच्य भू-भाग के जंगलों, खण्डहरों व अल्पज्ञात स्थलों में जाकर वहां रखी दुर्लभ मूर्तियों का भी सप्रमाण परिचय दिया है।

द्वितीय अध्याय में क्षेत्र की कला नगरी चन्द्रावती में स्थित उत्तरी भारत के सर्वश्रेष्ठ चन्द्रमौलीश्वर महादेव मन्दिर की मूर्ति एवं स्थापत्य कला का सुन्दर व जीवन्त वर्णन है। इसके गर्भगृह में 1300 वर्षो से स्थापित एवं निरन्तर सुपूजित शिवलिंग मूर्ति व उसकी आराधना पर लेखक ने दार्शनिक प्रभाव डाला है। मन्दिर के ललाट बिम्ब पर लकुलीश की यह मूर्ति होने से लेखक की मान्यता शिल्प व शास्त्रोक्त है कि यह मन्दिर शैवधर्म के पाशुपत सम्प्रदाय का उपासना केन्द्र रहा है।

तृतीय अध्याय में विष्णु व उनके अवतारों एवं ब्रह्मा की मूर्तियों का विवेचन है। लेखक ने स्थानीय संग्रहालय में प्रदर्शित विष्णु की योगासन, शयन तथा स्थानक मूर्तियों का पुरासाक्ष्यों के आलोक में

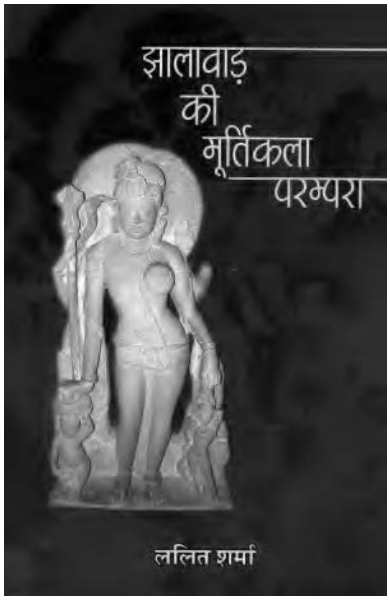

सटीक वर्णन किया है। इसी क्रम में बलराम व दत्तात्रेय की पहचान के स्त्रोत यद्यपि लेखक ने दिये हैं, परन्तु उन्होंने अनेक मूर्ति विज्ञान के विद्वानों द्वारा दत्तात्रेय की मूर्ति का कहीं भी वर्णन न करने की बात को भी रेखांकित करते हुए बताया कि स्थानीय संग्रहालय में प्रदर्शित यह मूर्ति दुर्लभ है। लेखक ने पुस्तक के कई अध्यायों के संदर्भो में अन्यत्र पहले से विवेच्य मूर्तियों और मन्दिर स्थापत्य की लोक भ्रान्तियों को अपने मौलिक विशदतर्को व पुष्ठ प्रमाणों से नकारने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। यह लेखक की नई पहचान का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

चतुर्थ अध्याय में लेखक ने 'शक्ति एवं देवी मूर्तियां' में दो शास्त्रोक्त प्रमाण बताये हैं। इनमें उन्होंने शक्ति मूर्तियों के रूप में उग्र चामुण्डा, काली तथा महिषमर्दिनी जैसी तांत्रिक मूर्तियों को एंव देवी मूर्तियों में श्रृंगार दुर्गा, सरस्वती, गजलक्ष्मी की जीवंत विवेचना की है। प्रेतासना व उग्र शक्ति मूर्तियों में उन्होंने चन्द्रावती नगरी की विशालकाय, भयानक, नग्न व नाभि पर वृश्चिकधारिणी एवं स्थानीय संग्रहालय में प्रदर्शित अपने कर के पान पात्र में मत्स्य लिये कंकाल स्वरूपा भयानक देवी की मूर्तियों का सचित्र विवरण प्रस्तुत कर भारतीय शाक्त परम्परा की सजीव विवेचना प्रस्तुत की है। लेखक ने एक नवग्रह पट्ट उठाये हुए जिस उग्र चामुण्डा का भाव भरा विवरण रेखांकित किया, वह निसंदेह भारतीय मूर्तिकला में एक विशिष्ट मूर्ति है। अभी तक किसी भी प्राचीन शिल्पशास्त्र, धर्मग्रन्थ या पुरातत्व कलाजगत में चामुण्डा की मूर्ति में नवग्रह के अंकन का कहीं कोई विधान नहीं मिलता है।

पंचम अध्याय में सूर्यदेव की विभिन्न मूर्तियों का वैदिक साक्ष्यों के आलोक में विवरण है। लेखक ने इसमें रेखांकित किया है कि वराहमिहिर ने सूर्य की मूर्ति को जिस उद्दीच्यवेश में निर्मित करने का निर्देश दिया, वह ईरानी प्रभाव का परिचायक है। लेखक ललित शर्मा ने

अपनी इस पुस्तक में कतिपय जिन सूर्य मूर्तियों का उल्लेख किया है, उनमें त्रिमुखी व बहुभुजी अधिक हैं। लेखक ने स्थानीय संग्रहालय में प्रदर्शित एक रथारूढ़ सूर्य की मूर्ति का सुन्दर विवेचन कर उसे उदीच्यवेश से मुक्त तथा किसी अव्यव से अलंकृत नहीं होना बताया है।

षष्ठम अध्याय में गणपति की मूर्तियों का सम्यक विवेचन है। इसमें जलदुर्ग गागरोन के पार्श्व में स्थित बलिण्डा घाट की विशाल और प्राकृतिक गणपति मूर्ति का भावभरा विवरण इसलिये लेखक ने रेखांकित किया है कि उसमें हाड़ौती मालवा के सैकड़ो परिवारों की गहरी लोक अस्था जुड़ी है। यह मूर्ति प्राकृतिक पर्यटन की दृष्टि से लेखक ने उल्लेखनीय मानी है। झालरापाटन के द्वारकाधीश मन्दिर में रखी नृत्यरत गणपति की मूर्ति भारतीय मूर्तिकला में इसलिये विलक्षण मानी जा सकती है क्योंकि उसमें गणपति के बाएं स्कन्ध पर बैठा उनकावाहन मूषक उनके ऊंचे उठे हाथ में लिये मोदक को उचककर खाने का आनन्द उठा रहा है। बाकि ऐसी मूर्ति का मूर्ति विज्ञान में कोई उल्लेख नहीं है।

सप्तम अध्याय संयुक्त एवं युगल देव मूर्तियों के शिल्पशास्त्रीय विवेचन पर केन्द्रित है। इस अध्याय में संयुक्त शिव-विष्णु, शिव-सूर्य, उमा-महेश, कल्याण सुन्दर, लक्ष्मी-नारायण, सूर्य-विष्णु, त्रिमुखी बैकुंठ मूर्ति की विवेचना है। पृ. 100 पर झालावाड़ संग्रहालय में प्रदर्शित अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति भारतीय शिल्पकला की अद्वितीय धरोहर है। लेखक ने भारतीय पुरातत्व तथा साहित्य प्रमाणों के आधार पर इसका जीवन्त वर्णन पूरी श्रद्धा से किया है। पुस्तक के आवरण पर प्रदर्शित इस मूर्ति के चित्र से इसके कला सौष्ठव को सहज ही परखा जा सकता है। लक्ष्मीनारायण की सुन्दर मूर्ति भारतीय संयुक्त मूर्तियों में विलक्षण है, जो द्विभुजी मानवीय देह वाले गरूड़ के स्कन्धों पर विराजमान है। विष्णु एवं उनके विशिष्ट अवतार नृसिंह तथा वराह के मुखवाली बैकुंठ मूर्ति का वर्णन मूर्ति विज्ञान के ग्रन्थ अपराजितापृच्छा व रूपमण्डन के आधार पर बड़े सजीव रूप में किया है।

अष्टम अध्याय में जैन एवं बौद्धमूर्तियों का विशिष्ट विवेचन है। विवेच्य क्षेत्र के चांदखेड़ी जैन मन्दिर में स्थापित ऋषभदेव (आदिनाथ) की विशाल और बद्धपद्मांजलि मुद्रा की कलात्मक मूर्ति के स्कंध पर लेखक संवत् 512 का अंकन होना बताकर उसे जैनकला में अतिप्राचीन प्रमाण माने जाने की संभावना बताते हैं। झालरापाटन के शांतिनाथ जैन मन्दिर के गर्भगृह की बाह्यताख में जैनयक्षी चक्रेश्वरी, पद्मावती व अम्बिका की मूर्तियों का सुन्दर वर्णन शिल्पाधारित है। विवेच्य क्षेत्र में राजस्थान की सबसे विशाल कोलवी बौद्ध गुफाओं के वास्तुविन्यास तथा आसनस्थ एवं स्थानक बौद्ध मूर्तियों पर भी परिचयात्मक दृष्टि डाली गई है। अन्तिम नवम् अध्याय में कुछ ऐसी विशिष्ट मूर्तियों का विवरण किया गया है, जिनकी जानकारी सामान्य पाठकों अथवा शिल्पकला पर शोध करने वालों को होना चाहिए। ललित शर्मा ने उनके लिये इस अध्याय में एक आधार सामग्री को प्रस्तुत कर बड़ा काम किया है। इनमें झालरापाटन के शनि मन्दिर की विमाता (बेमाता) और विधाता की उस दम्पति मूर्ति का जीवन्त वर्णन है जो भारत में एकमात्र उदाहरण है। लेखक ने धार्मिक प्रमाणों और अध्याय के अन्त में दिये संदर्भ में इन मूर्तियों को अपने पुष्ट तर्को से देश का दुर्लभ उदाहरण प्रमाणित कर उनकी पहचान पुष्ठ बताने का प्रयास किया है। शिल्प के किसी ग्रन्थ में और न ही किसी देव मन्दिर में इनकी मूर्तियां दिखाई नहीं देती है। इसी अध्याय में शालभंजिका, चक्रपुरूष, कुबेर, वायु, अग्नि, वरूण, गंधर्व, सुरसुन्दरी तथा नदी देवताओं की मूर्तियों का ज्ञानवर्द्धक परिचय है।

प्रस्तुत पुस्तक में कई ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु पठन में आए हैं जिनके लिए लेखक के कार्य को सराहनीय माना जाना चाहिए। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु पद्मनाभ मन्दिर (झालरापाटन) की स्पष्ट रूप से सही पहचान है, जिसे जनमानस सूर्य मन्दिर कहता है। विद्वान लेखक ललित शर्मा ने मन्दिर के गर्भगृह के उत्तरांगपट्ट पर शिव की तांडव नृत्यमूर्ति तथा मन्दिर में उत्कीर्ण सर्वाधिक शिव परिवार व शैवधर्म से सम्बन्धित मूर्तियों के पुष्ट आधारों पर इसे 'शिव का आयतन' बताया है। शिल्प शास्त्र और मन्दिर स्थापत्य विज्ञान में भी यह स्पष्ट निर्देश है कि मन्दिर के मुख्य द्वार के ललाट प्रतिबिम्ब पर स्थापित मूर्ति ही उस मन्दिर की प्रमाणिक पहचान होती है। दलहनपुर, कोलवी, गागरोन तथा गंगधार की कई ऐसी दुर्लभ व अभी तक अचर्चित रही मूर्तियों को स्वयं खोजकर ललित शर्मा ने अपनी मौलिक शोध का परिचय दिया है। झालावाड़ संग्रहालय में कृष्णलीला के एक ऐसे फ्लक का वर्णन लेखक ने किया है, जो भारतीय कला में असाधारण हैं। ''झालावाड़ की मूर्तिकला परम्परा'' पुस्तक में ललित शर्मा का श्रम व शोधपूर्ण तार्किक व मौलिक चिन्तन उनके कार्य के साथ एक-एक पृष्ठ पर स्पष्ट देखा जा सकता है। उनकी अपनी जन्मभूमि की इस शिल्पकला के प्रति अनन्य निष्ठा प्रणम्य है। अन्त में ''झालावाड़ की मूर्तिकला परम्परा'' विशेषकर शोधार्थियों के अलावा आम पाठकों के लिये भी उपयोगी है, जिसे पढ़कर वे आसानी से विविध देव मूर्तियों की पहचान सहज रूप से कर सकते है। विश्वास है यह पुस्तक भारतीय कला परम्परा की पुस्तकों के भण्डार में अपना महत्व प्रतिष्ठापित करेगी।

लेखक- ललित शर्मा/प्रकाशक- झालावाड़ विकास मंच, झालावाड़/प्रथम संस्करण- सन् 2017ई./मूल्य 175 रूपये/चित्र (रंगीन) संख्या कुल - 663=69 (पृथक से)/पृष्ठ संख्या 144

- म.नं. 168, हरिभाऊ उपाध्याय नगर (मैन) कर्निवाल
सिनेमा के पास, कोटड़ा, अजमेर (राज.)-305004
मो.: 8209414532

सुविचार

'मैं आस्थावान व्यक्ति हूँ। मुझे केवल भगवान का आसरा है। मेरे लिए एक ही कदम पर्याप्त है। अगला कदम समय आने पर भगवान स्वयं मुझे सुझा देगा' - **महात्मा गाँधी**

पुस्तक समीक्षा

दस्तावेजी पुस्तक 'मालवा की कला-विभूति पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकरणकर' : एक परिचय

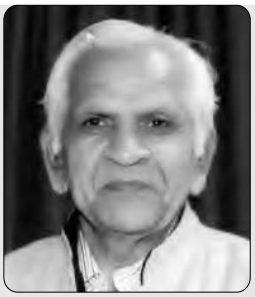

युगेश शर्मा

वरिष्ठ चित्रकार डॉ. रेखा भटनागर (भोपाल) द्वारा लिखित दस्तावेजी पुस्तक 'मालवा की कला-विभूति पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकरणकर' कला गुरु के दृश्य चित्र, व्यक्ति चित्र एवं रेखांकन को बखूबी अंकित किया गया है। आकृति संयोजन और रेखांकन जल रंगीन कृतियों का चित्रण देखते ही बनता है। इस पुस्तक में रेखा जी ने सभी के समक्ष अपने गुरु का समग्र कलात्मक सृजन पक्ष ला दिया कि वे चित्रकार पहले थे बाद में पुरातत्ववेत्ता।

पिछले दिनों भोपाल के स्वराज भवन में डॉ. वाकरणकर जी के 55 रेखांकन, दृश्य चित्रों और व्यक्ति चित्रों को प्रदर्शित किया गया। रेखाओं की पकड़, उसके आकार प्रकार, हाव-भाव एवं उसकी गहराई उनकी शिष्या डॉ. रेखा भटनागर में आई। इसी कारण रेखा जी के रेखांकनों में सुघड़ता व सौम्यता दिखाई देती है। उनके द्वारा शब्दांकन से रेखांकन कार्यशैली में किया गया कार्य अनूठा है।

डॉ. वाकणकर की कला के रचनात्मक पक्ष को उजागर करती यह संग्रहणीय पुस्तक म.प्र. शासन के जनसम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित की गई है। यह अनूठी पुस्तक आने वाली पीढ़ी के लिये प्रेरणा बनेगी। यह कला विषय के पाठ्यक्रम में रखी जाने योग्य है। इस पुस्तक में डॉ. वाकणकर जी के द्वारा बनाये गये प्रत्येक चित्र का वर्णन बखूबी किया गया है। उनके द्वारा इटली, रोम, फ्रांस और भारत के व्यापक भ्रमण के दौरान किये गये रेखांकनों का समावेश इस पुस्तक में है। डॉ. वाकरणकर ने रानी लक्ष्मीबाई की 125वीं जयंती के अवसर को ध्यान में रखकर जो रेखांकन सृजित किया उसमें जीवंतता पूरी तरह से दृष्टिगोचर होती है। उनकी कृतियों में कागज पर रेखाओं की दृढ़ता और रंगीन दृश्यचित्रों में गहराई का उतार-चढ़ाव देखते ही बनता है।

रेखा जी डॉ. वाकणकर के पुरातत्वीय पक्ष को स्वयं भोपाल स्थित देहली पब्लिक स्कूल, इंटरनेशनल पब्लिक स्कूल और संस्कार वैली स्कूल में पढ़ा चुकी हैं। अपने गुरु के सृजनात्मक पक्ष को स्कूलों में पढ़ाना शिष्या के लिये गुरु की कल्पना को साकार करने जैसा है। कई कलाकार कला गुरु के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और डॉ. रेखा भटनागर के शिष्यत्व से अपरिचित हैं। इस कारण यह बताना आवश्यक जान पड़ता है कि रेखा जी कम उम्र से ही उनके सानिध्य में रहीं। रेखा जी की शादी के बाद जब भी डॉ. वाकणकर भोपाल और भीमबैठका आते थे, उनके घर अवश्य पहुंचते थे। डॉ. वाकणकर के देवलोक गमन के बाद डॉ. विष्णु भटनागर जो कि उनके दत्तक पुत्र हैं, रेखा जी ने अग्रेतर कला शिक्षा ग्रहण की। इसी दौरान मिली प्रेरणा के फलस्वरूप उन्होंने अपनी शादी के बाद एम.ए. कर पीएच.डी. खेरागढ़ कला एवं संगीत विश्वविद्यालय से की। यह गौरव की बात है कि उन्हें यह डिग्री तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत के हाथों वर्ष 2005 में प्राप्त हुई।

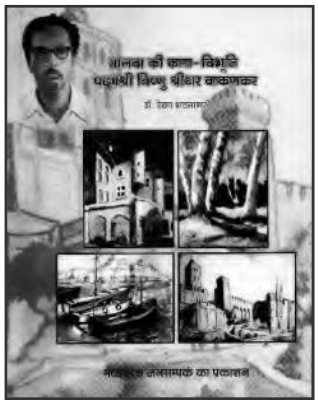

पारम्परिक शैली के प्रणेता डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर ने विश्व में एक ऐसी प्रदर्शनी की शुरुआत की जो आज भी है और इकलौती भी है। उनकी प्रेरणा से प्रारंभ कालिदास के साहित्य पर आधारित राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता प्रतिवर्ष आयोजित की जाती है। प्रतियोगिता के लिए कालिदास संदर्भित ग्रंथों में से किसी एक ग्रंथ पर आधारित पारम्परिक शैली में पेंटिंग्स व मूर्तियां आमंत्रित की जाती हैं। ये ग्रंथ हैं- रधुवंशम्, कुमार सम्भवम्, मेघदूत, ऋतुसंहारम्, मालविका अग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् या अभिज्ञानशाकुन्तम्। इन ग्रंथों में से किसी एक पर ही उद्घोषणा के पश्चात लोकशैली, पारम्परिक शैली, मिनिएचर और मूर्ति को लेकर प्रदर्शनी का आयोजन होता है। वर्तमान में एक लाख रुपये का पुरस्कार म.प्र. सरकार के संस्कृति विभाग द्वारा इन चारों विधाओं में दिया जा रहा है।

वर्तमान में डॉ. रेखा भटनागर अपने कला गुरु से प्राप्त ज्ञान को बालक-बालिकाओं, युवाओं एवं महिलाओं में प्रशिक्षण के माध्यम से बाँट रही हैं। प्रतिवर्ष अपनी बिटिया 'विदुषी भटनागर' के नाम से दो बच्चों को सम्मानित किया जाता है। इनमें एक बालिका बाल निकेतन की रहती है, जो छात्र-छात्राएं प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, वे भीमबैठका के शैलचित्रों का अपने आर्ट वर्क में प्रयोग करते हैं। समय-समय पर चित्र प्रदर्शनी का आयोजन भी रेखांकन ललित कला समिति द्वारा किया जाता है। इसके अलावा रेखांकन ललित कला समिति के माध्यम से हर वर्ष वार्षिक कैलेण्डर भी प्रकाशित किया जाता है, जिसमें डॉ. रेखा भटनागर के शिष्य बाल एवं युवा चित्रकारों की कृतियों को स्थान दिया जाता है।

'मालवा की कला-विभूति पद्मश्री विष्णु श्रीधर वाकणकर' के प्रकाशन के बाद डॉ. रेखा भटनागर के कलात्मक लेखन को नया आयाम मिला है और इसको निश्चित ही आगे बढ़ाएंगी। इस पुस्तक से नई पीढ़ी को डॉ. वाकणकर की पारंपरिक शैली में अपनी रचनात्मक प्रतिभा को निखारने की प्रेरणा भी मिलेगी और वे कला के क्षेत्र में उन जैसी ऊँचाई पाने के लिए अनवरत कला साधना करने के लिए अवश्य ही प्रवृत्त होंगे।

लेखिका : डॉ. रेखा भटनागर,
प्रकाशक : म.प्र. जनसंपर्क, भोपाल,
संस्करण : नवम्बर 2017

- व्यंकटेश कीर्ति, 11, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
चूना भट्टी, भोपाल-16, मो. 9407278965

आयोजन

अभिनव कला परिषद का 55 वां बरखा महोत्सव

छप-छप करते, अब कहाँ बारिश के वो गीत ?

सुरेश तांतेड़

हिन्दुस्तानी फिल्म संगीत में बरखा ऋतु, बादल, रिमझिम, झूले, मेघा, बादरा और बिजली की कड़क-धड़क के साथ तेज बरसात के प्रतीकों का खूब उपयोग हुआ है जिनमें उल्लास, प्रेम, इंतजार, मिलन और विछोह के साथ ही नायिका के मांसल सौंदर्य को उभारने का भरपूर प्रयोग किया गया। गत 12 अगस्त को रवीन्द्र भवन भोपाल में सिने संगीत जगत की 1940 से 1980 दशक तक के सर्वाधिक लोकप्रिय गीतों को लेकर पहली बार एक प्रयोगात्मक आयोजन नगर की प्रतिष्ठित सांस्कृतिक संस्था अभिनव कला परिषद ने अपने सर्वाधिक लोकप्रिय बरखा महोत्सव में 'रिमझिम के तराने' शीर्षक से प्रदेश के कोई 31 तीन पीढ़ी के गायक वादकों को लेकर किया, इस यादगार आयोजन में उन्हीं गीतों का समावेश किया गया जिनकी स्वर रचना शास्त्रीय रागों, लोक परंपरा तथा ठुमरी, कव्वाली और मुजरे जैसे अंगों में रची बसी थी। 22 गीतों से सजी इस शाम का आगाज 1944 की 'रतन फिल्म के गीत रूम झुम बरसे बरखा, मस्त हवाएं आई से हुआ जिसे नौशद के संगीत निर्देशन में जोराबाई अम्बाले वाली ने स्वर दिया, इसे भोपाल की रजनी धूरिया ने बहुत ही सदी आवाज में हुबहू गाकर खूब तालियां बंटोरी। रजनी और शिवानी ने गुलाम हैदर के संगीत निर्देशन में 1941 में बनी फिल्म खजांची का गीत सावन के नजारे जिसे शमशाद बेगम ने गया था।

अभिनव के इस अनूठे छप-छप की तान पर बूंदों के तराने बने बेजुबावरा (1952) का गीत झूले में पवन के आई बहार, किस्मत फिल्म (1943) का गीत धीरे-धीरे आ रे बादल, जिसे अनिल विश्वास के संगीत में अमीरी बाई कर्नाटकी ने गाया था, मेला फिल्म (1948) का गीत आई सावन ऋतु आई, भाभी (1957) का ओ कारे कारे बादरा, परख फिल्म का ओ सजना बरखा बहार आई, बहाना फिल्म (1960) जो रे बदरा बेटी जा, बरसात की रात (1960) जिन्दगीभर नहीं भूलेगी, गरजत बरसत सावन आयो, चिराग (1959) छाई बरखा बहार पड़े अंगना फुहार, आजाद फिल्म (1955) जारी जारी ओ कारी, सांझ और सबेरा (1964) अंजहुँ न आये बालमा, मेरा साया (1966) नैनो में बदरा छाये, छोटे नवाब (1961) घर आजा घिर आये, बरसात की रात (1960) गरजत बरसत सावन आयो, चश्में बद्दूर (1980) कहाँ से आये बदरा, सावन का महीना पवन करे शोर, डम-डम डीगा डीगा, नैनो में बदरा छाये आदि कर्णप्रिय, मधुर संगीत और कौरस आवाज में ढप, मटकी, नगाड़े, ढोल, तबला, ढोलक की थाप पर, बांसुरी, सितार, शहनाई, संतूर की स्वर लहरियों में भीगे, संगीतकार नौशाद, गुलाम हैदर, सचिन, सलिल, रोशन, मदन मोहन, कल्याणी-आनंदजी, एसडी बर्मन, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, चित्रगुप्त, सी रामचन्द्र, राजकमल अनिल विश्वास, शंकर जयकिशन के द्वारा राग मिया की मल्हार, मेघ मल्हार, शिवरंजनी, भीम पलाशी, मालगुंजी, सारंग, खमाज, यमन में रचे, जोराबाई अम्वाले वाली, अमीरी बाई कटिकी, बेसुदास, लता, रफी, मन्नाडे, तलत, मुकेश, गीता दत्त, सुमन कल्याणपुर, शमशाद बैगम, कमल बारोट द्वारे गए गीतों को राजधानी की जानी मानी गायिका रजनी धूरिया, शिवानी धूरिया, कीर्ती सूद, अश्विना रांगणेकर, पूर्वी सुहास, आकृति मेहरा, कृतिका श्रीवास्तव, प्रसन राव, अनिल कोचर, वी तिवारी सहित 11 अनुदधरित प्रतिभाओं ने अपने कंठ माधुरी से वर्षा ऋतु की रानी बरखा को सावन के झूले में होले-होले झुलाया।

समारोह के अतिथि प्रसिद्ध कहानीकार लेखक संतोष चौबे, वरिष्ठ कवि श्री पवन जैन ने सभी कलाकारों को अभिनव कला सम्मान से सम्मानित कर कहा कि अपने नाम के अनुरूप अभिनव कला परिषद 55 वर्षों से नवाचार करती आ रही है, ऐसे आयोजन भारतीय परंपरा को जिन्दा रखे हुए हैं, इसके लिए बधाई के पात्र हैं संस्था के संस्थापक-सचिव पं. सुरेश तांतेड़ जो कि सच्चे अर्थों में स्वयं कलाओं के पर्याय बने हुए हैं। उन्होंने इस आयोजन की परिकल्पना, गीतों का चयन और संगीत आयोजन करके नगर के अन्य आयोजनकों को एक संदेश दिया है कि अपनी भारतीय संगीत की शालीन परंपरा को बचाये रखने के लिए स्तरीय प्रयास करें।

अलंकृत हुईं छह कला विभूतियाँ

मध्यप्रदेश की लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था मधुवन का गुरु शिष्य परंपरा पर एकाग्र अड़तालीसवां गुरुवंदना महोत्सव विगत 11 अगस्त को रवीन्द्र भवन भोपाल के सभागार में संपन्न हुआ। देश की कला राजधानी के शताधिक संस्कृति कर्मियों व संस्कृति प्रेमियों की गरिमापूर्ण उपस्थिति में विभिन्न क्षेत्रों की छह मूर्धन्य विभूतियों के आत्मीय एवं श्रद्धाभावना से भरे अभिनंदन का यह आयोजन प्रसिद्ध साहित्यकार श्री रमेश दवे की अध्यक्षता तथा यशस्वी पत्रकार श्री महेश श्रीवास्तव के मुख्य आतिथ्य में आयोजित हुआ। भारतीय संस्कृति की गुरु शिष्य परंपरा को समर्पित इस आयोजन का श्रीगणेश प्रसिद्ध नृत्यांगना प्राची चौकसे के निर्देशन में उनकी शिष्याओं द्वारा प्रस्तुत श्री गणेश वंदना तथा मध्यप्रदेश गान के भावपूर्ण मंचन के साथ हुआ। गुरु के प्रति सामाजिक आस्था, श्रद्धा एवं कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के क्रम में मंचासीन अतिथियों एवं संस्था अध्यक्ष श्री सुभाष विट्ठलदास तथा कार्यकारी अध्यक्ष श्री विजय अग्रवाल द्वारा क्रमशः चिकित्सा के क्षेत्र में विश्वस्तरीय ख्याति प्राप्त मानवता की सेवा में जीवन समर्पित करने वाले मूर्धन्य चिकित्सा शास्त्री डॉ. एनपी मिश्रा, अनेक अंग्रेजी कृतियों का हिंदी अनुवाद कर साहित्य की श्री वृद्धि करने वाले वरिष्ठ लेखक श्री इन्दु प्रकाश कानूनगो, रंगमंचीय लोक एवं शास्त्रीय नृत्य परंपरा की सुविख्यात नृत्यांगना डॉ. शकुन्तला पँवार, ख्यातिलब्ध संगीतज्ञ, तालशास्त्री, कला समीक्षक एवं विद्वान वक्ता पं. विजयशंकर मिश्र, पर्शियन एवं भारतीय शैली के सुपरिचित अभिनेता एवं रंगकर्मी श्री ललित किशोर मिश्रा तथा सुप्रसिद्ध शिक्षाविद तथा दर्शनशास्त्र की विदुषी डॉ. छाया राय को पुष्पगुच्छ/हार, शॉल, श्रीफल प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिन्ह प्रदान कर 'श्रीष्ठ कला आचार्य' की मानद उपाधि से अलंकृत एवं सम्मानित किया गया।

प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक डॉ. लवकुश चतुर्वेदी कार्यक्रम में स्वास्थ्य ठीक न होने से व उपस्थित नहीं हो पाये। समारोह को संबोधित करते हुए श्री रमेश दवे, श्री महेश श्रीवास्तव ने गुरु शिष्य परंपरा को ज्ञान के प्रसार की सर्वश्रेष्ठ पद्धति निरूपित करते हुए इसे अक्षुण्य रखने में मधुबन की भूमिका को महत्वपूर्ण एवं अनुकरणीय बताया तथा इसके सचिव/निदेशक पं. सुरेश तांतेड़ के समर्पण की सराहना की। कार्यक्रम के द्वितीय चरण में प्रसिद्ध सुगम गायिका श्रीमती कीर्ति सूद एवं गायक व संगीत गुरु प्रसन्ना राव की शिष्य मंडली द्वारा मीरा, तुलसी एवं कबीर की भावी रचनाओं की सुमधुर प्रस्तुति दी। प्रारंभ में अतिथियों द्वारा भूतभावन भगवान महाकाल के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित की तथा दीप प्रज्ज्वलित किया।

सचिव श्री सुरेश तांतेड़ ने आयोजन की संकल्पना प्रस्तुत कर स्वागत भाषण दिया। कार्यक्रम का संचालन प्रसिद्ध समाजसेवी, रंगकर्मी एवं उद्घोषक श्री कमलेश जैमिनी ने किया तथा आभार प्रदर्शन साहित्यकार डॉ. रामवल्लभ आचार्य ने किया।

रपट – सुरेश तांतेड़

■

ध्रूवपद ख्रूयाल ठुमरी और गजल गायकी की अविरल धारा बही पंडित गामा महाराज स्मृति समारोह में

सम अर्थात् सोसाइटी फॉर एक्शन थ्रू म्यूजिक एवं संगीत नायक पंडित दरगाही मिश्र संगीत अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में तबला शिरोमणि पंडित गामा महाराज की पुण्य स्मृति में आयोजित त्रिविध नामक कार्यक्रम इस बार एक अलग ऊंचाई लिए हुए था। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित सुप्रसिद्ध गायक पंडित सारथी चटर्जी ने ठीक ही कहा कि नये और अपारिचित संगीतकारों को सुनने के लिए इतनी बड़ी संख्या में लोगों की उपस्थिति कि लोगों को जमीन पर बैठना पड़े यह साबित करता है कि आप सभी लोग सम को कितना प्रेम करते हैं, इस पर कितना विश्वास करते हैं जबकि आजकल बड़े बड़े कलाकारों के कार्यक्रम में भी सभागार खाली रह जाते हैं। पंडित हरि दत्त शर्मा ने शाल, पुष्प गुच्छ, आगामी वर्ष की डायरी और स्मृति चिन्ह देकर सारथी जी का अभिनंदन किया । बिहार के दरभगा घराने के उभरते सितारे सुमित आनंद पांडे के ध्रूवपद गायन से कार्यक्रम का अत्यंत सुरीला और ओज पूर्ण शुभारम्भ हुआ। राग यमन में सुविस्तृत प्रभावशाली आलाप के बाद सलमान खान वारसी के पखावज के साथ सूर ताल में निबद्ध बंदिश शंकर शिव।

आज के शाम की दूसरी गायिका डॉ जया शर्मा ने राग रागेश्वरी की भावपूर्ण अवतारणा की। विलंबित एक ताल और द्रुत त्रिताल में निबद्ध उनकी दोनों ही रचनाओं ने प्रभावित किया। आलाप, विभिन्न प्रकार की तानें, और राग ही नहीं बंदिश का भी सुविचारित विस्तार जया की विशेषता रही। वे प्राध्यापिका हैं इसलिए उनका अध्ययन और चिंतन भी उनकी गायकी मे झलक रहा था। तबला पर उदय शंकर मिश्र, हारमोनियम पर ललित सिसोदिया और गायन तथा तानपुरा पर नेहा शर्मा गुप्ता की उपस्थिति भी प्रभावशाली रही। डॉ. जया शर्मा को इस शाम संगीत भूषण सम्मान से सम्मानित किया गया।

पिनाक धर शब्द और स्वर की दृष्टि से उत्तम श्रेणी की थी। इनकी चार ताल में निबद्ध दूसरी रचना आनंदी जगबंदी त्रिपुर सुंदरी माता भी काफी प्रशंसित हुई। सुमित की आवाज काफी अच्छी है, स्वरों पर अच्छी पकड़ है और लयकारियों के प्रयोग के समय शब्दों की अवहेलना नहीं करते हैं यह बहुत ही अच्छी बात ध्रूवपद के प्रेमियों के लिए। सलमान खान का पखावज और ललित सिसोदिया का सारंगी भी प्रशंशित हुआ। सुमित को संगीत रत्न सम्मान से सम्मानित किया गया।

इस अत्यन्त सुरीले संगीत समारोह का अत्यंत सुरीला समापन डॉ मीलू वर्मा के भावपूर्ण गायन से हुआद्य त्रिविध की इस कड़ी में मीलू ने ठुमरी – कौन गली गये श्याम और दादरा – बेदर्दी नेहा लगा के दुख दे को इतने सुरीले अंदाज़ में पेश किया कि लोग सम्मोहित से हो गये। इनके बोल बनाव का अंदाज़, बढ़त का ढंग काफी आकर्षक है। दादरा के बीच बीच में शेरों की अदायगी भी खूब प्रशंशित हुई। बाद में लोगों के अत्यधिक अनुरोध पर वहीं उपस्थित म्यूजिक कंपोजर पंडित मोहिंदर सरीन जी की एक गजल भी मीलू ने सुनाई – लबों पे जान अड़ी है जरा ठहर जाओ, बहुत कठिन ये घड़ी है जरा ठहर जाओ। जिसे सुनकर लोग अत्यन्त भावुक हो गए। डॉ मीलू वर्मा को संगीत रत्न सम्मान से सम्मानित किया गया। इस समारोह में पंडित मोहिंदर सरीन जी का अभिनन्दन भी किया गया। संगीत, साहित्य और कला जगत की तमाम हस्तियों ने उपस्थित होकर इस समारोह की गरिमा बढ़ाई। कार्यक्रम का संचालन सम के संस्थापक अध्यक्ष पंडित विजय शंकर मिश्र ने किया।

–अस्मिता मिश्रा

राष्ट्रीय संगीतज्ञ परिवार एक सांस्कृतिक संस्था

राष्ट्रीय संगीतज्ञ परिवार एक ऐसी सांस्कृतिक संस्था है जो युवा संगीतकारों के माध्यम से दूर दराज के इलाकों में संगीत को पहुंचाने के लिए कृत संकल्पित है। इसके संस्थापक पंडित देवेंद्र कुमार वर्मा संगीत के लिए पूरी तरह से समर्पित हैं।

विगत दिनों में इस संस्था ने कई अच्छे आयोजन किया। गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा के साथ मिलकर इस संस्था ने नवोदित कलाकार समिति के सभागार में असम के संगीतकारों के साथ एक भव्य समारोह आयोजित किया। श्री नंदकिशोर चौधरी का चतुरंग गायन खूब पसंद किया गया। सुब्रतो चक्रवर्ती की तबला संगत भी काफी आकर्षक रहा। चितरंजन चक्रवर्ती का त्रिताल में स्वतंत्र तबला वादन भी आकर्षक रहा। उन्होने अपने तबले में पेशकार, आड़ी लय के कायदे, टुकड़े और गतों की आकर्षक प्रस्तुति की

इनके साथ हारमोनियम पर पंडित देवेंद्र कुमार वर्मा ने काफी अच्छी संगत की। प्रोफेसर उत्तम देव का सुरीला गायन कार्यक्रम का विशेष आकर्षण था। उन्होने विलंबित और द्रुत ख्याल के बाद भैरवी में भी एक प्रसिद्ध रचना भवानी दयानो का भावपूर्ण गायन किया. यह झपताल में निबद्ध है सुब्रतो चक्रवर्ती का तबला वादन काफी आकर्षक रहा। वे श्रोताओं को बार बार अपने आकर्षक वादन से

आकर्षित कर रहे थे उन के बोलों का निकास. ठेकों का भराव, और मूल संगीत कारों के भावों को समझने की क्षमता उन्हे अन्य संगीतकारों से अलग करता है।

राष्ट्रीय संगीतज्ञ परिवार का दूसरा कार्यक्रम इंडिया हैबीटेट सेंटर में संपन्न हुआ जिसमें पटियाला से पधारे प्रतिभा शाली सितार वादक सुमित सिंह पदम ने अपना संभावना शील सितार वादन प्रस्तुत किया। सुमित का हाथ अत्यंत सुरीला और तैयार है। उनके हाथ में मिठास है, मींड़ का काम भी उनका बहुत अच्छा है। विलंबित त्रिताल, 9 मात्रा के मत्त ताल और फिर द्रुत त्रिताल में सुमित सिंह पदम ने वादन करके लय और ताल पर भी अपनी पकड़ सिद्ध की। सिद्धार्थ बनर्जी की तबला संगत भी टक्कर की और काफी अच्छी रही। सिद्धार्थ काफी अच्छा बजाते हैं। हाथ में तैयारी भी है और मिठास भी साथ ही मुख्य कलाकार के साथ सहयोग करने की इच्छा भी। दोनों ही युवा संगीतकारों ने अपनी उज्ज्वल प्रतिभा का परिचय देते हुए समापन एक सुंदर भाटियाली धुन से किया। मंच संचालन राष्ट्रीय संगीतज्ञ परिवार के अध्यक्ष पंडित देवेंद्र कुमार वर्मा ने किया।

बलराम गुमास्ता का कविता पाठ

स्वराज भवन सभागार में वनमाली सृजन पीठ द्वारा वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता का 22 अक्टूबर, 2018 को एकल कविता पाठ का आयोजन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर 'रंग संवाद' पत्रिका के नए अंक का लोकार्पण भी सम्पन्न हुआ। आयोजन की अध्यक्षता संतोष चौबे ने की। इस अवसर पर शहर के गणमान्य साहित्यकार उपस्थित हुए।

दिव्यांग कलाकारों की सुंदर प्रस्तुतियाँ

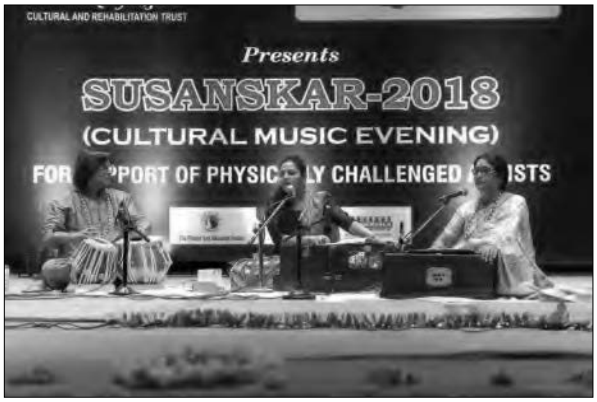

सेवा निवृत विंग कमांडर एम पी. शर्मा और और उनकी नृत्यांगना पत्नी विदुषी कल्पना शर्मा विगत कई वर्षों से दिव्यांग संगीतकारों को लेकर सुसंस्कार नामक एक कार्यक्रम अपनी संस्था क्रियांजलि के माध्यम से आयोजित कर रहें हैं। शर्मा दम्पति ने बताया कि अपने दिव्यांग पुत्र की स्मृति में आयोजित करते हैं। दीप प्रज्वलन की औपचारिकता के बाद बापू के प्रिय भजन वैष्णव जन तो तेने कहिए को तीन दिव्यांग किशोरवयी कलाकारों शुभम आर्य, रमाकांत प्रभाकर और बरजेंन्द्र पांडे ने अत्यंत सुरीले अंदाज में प्रस्तुत किया। इनके द्वारा प्रस्तुत अन्य भजन भी खूब सराहे गये।

क्रियांजलि सांस्कृतिक एवं पुनर्वास प्रतिष्ठान के द्वारा आयोजित सुसंस्कार नामक इस कार्यक्रम में 7 संगीत विभूतियों का अभिनंदन भी किया गया जिनके नाम हैं - पंडित देवेंद्र कुमार वर्मा,पंडित केशव तलेगाँवकार, पंडित वी. नरहरी, विदुषी रुचि शर्मा, प्रतिभा तलेगाँवकार, श्री शिव दयाल तनेजा और पंडित विजय शंकर मिश्र। श्वेता जैन और ईशान मेहँदीरत्ता की प्रस्तुतियाँ आकर्षक रहीं। दिव्यांग संगीतकारों के अलावा दूसरे कुछ संगीतकारों और नृत्य कारों की प्रस्तुतियाँ भी सराहनीय रहीं। विदुषी रुचि शर्मा और कल्पना शर्मा का नृत्य आकर्षण का विशेष केंद्र रहा।

आगरा की शुभ्रा तलेगाँवकार के गायन ने लोगों को भाव विभोर कर दिया। उनके साथ तबला संगत पंडित केशव तलेगाँवकार और हारमोनियम संगत प्रतिभा तलेगाँवकार ने की। वी. नरहरि का तबला, अमृता दत्त मजूमदार के सुमधुर गायन और अनन्य के हारमोनियम वादन की प्रस्तुतियाँ भी सराहनीय रहीं।

-पं. विजय शंकर मिश्र

मध्यप्रदेश का 63वां स्थापना दिवस समारोह

रविन्द्र भवन के मुक्ताकाश मंच पर मध्यप्रदेश के 63वें स्थापना दिवस के अवसर पर 1 व 2 नवम्बर, 2018 को विभिन्न अंचलों से आये जनजातीय कलाकारों का नृत्य और शास्त्रीय गायन हुआ। इसमें प्रमुख रूप से वरिष्ठ शास्त्रीय गायक छन्नूलाल मिश्र और मीता पंडित का शास्त्रीय गायन हुआ। इसमें रसिकजनों ने इस समारोह का आनंद लिया। मंच सज्जा ने सबका मन मोह लिया। संचालन विनय उपाध्याय ने किया।

■

भारत भवन में रंग एकाग्र छः दिवसीय नाट्य समारोह

भारत भवन और सुमुखा संस्था, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वाधान में प्रख्यात नाटककार, निर्देशक दया प्रकाश सिन्हा के रंग अवदान पर केन्द्रित नाट्य समारोह 28 अक्टूबर से 2 नवम्बर, 2018 तक छः दिवसीय समारोह में सिन्हा द्वारा लिखित नाटकों का मंचन हुआ। मंचित नाटक 'रक्त अभिषेक', 'सम्राट अशोक', 'सादर आपका', 'कथा एक कंस की', 'अपने-अपने दाँव' और 'सीढ़ियाँ' आदि सारे नाटक चर्चित थे। जिन्हें दर्शकों ने खूब सराहा। नाटकों के मध्य ही सुबह के सत्र में 31 अक्टूबर, 2018 को 'हिन्दी में मौलिक नाटकों का अभाव क्यों है ?' विषय पर परिसंवाद भी रखा गया। परिसंवाद में कला समीक्षक, नाटककार, निर्देशक आदि ने हिस्सा लिया। इनमें डी.पी. सिन्हा, जे.पी. सिंह, राजीव वर्मा, आलोक चटर्जी, दीपक कंजरीकर, संगम पांडे, अजीत राय, अनिल रस्तोगी, नंदकिशोर पांडे, शिवकेश मिश्र, प्रताप शहगल, विनय उपाध्याय, संजय मेहता, सुदेश शर्मा, बलवंत ठाकुर ने नाट्य विधा पर अपने-अपने विचार रखे।

झलकियाँ

युव रानी कल्पना देवी जी के साथ कला समय पत्रिका की संस्कृति सम्पादक संगीता सक्सेना और सांस्कृतिक प्रतिनिधि सुश्री आस्था सक्सेना।

प्रवीण भटनागर, जनसंपर्क अधिकारी पश्चिम सांस्कृतिक कला केन्द्र उदयपुर और सुश्री आस्था सक्सेना।

श्री भारतेन्दु समिति कोटा, राजस्थान के सम्मान समारोह में कला समय पत्रिका का लोकार्पण।

श्रद्धांजलि

पद्म विभूषण अन्नपूर्णा देवी

जन्म: 23 अप्रैल, 1927

निधन : 13 अक्टूबर, 2018

सुप्रसिद्ध हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतकार मैहर घराने की उस्ताद अलाउद्दीन खान की बेटी और पं. रविशंकर की पत्नी, सुरबहार वादक थी।

पद्मश्री डी.के. दातार

जन्म : 14 अक्टूबर, 1932

निधन : 10 अक्टूबर, 2018

पं. विघ्नेश्वर शास्त्री और प्रो बी.आर. देवधर जैसी महान विभूतियों से प्रशिक्षण प्राप्त पंडित दातार का वायलिन वादन गायकी के नजदीक था। वे विश्व प्रसिद्ध वायलिन वादक रहे।

चन्द्रसेन विराट

जन्म : 3 दिसम्बर, 1936

निधन : 15 नवम्बर, 2018

हिंदी ग़ज़ल के इतिहास में अग्रजवत चंद्रसेन विराट का नाम शीर्षस्थ ग़ज़लकारों में है। विराट के लिये लेखन यश या धन प्राप्ति का माध्यम नहीं समाज परिवर्तन और समय परिवर्तन का जरिया है।

सभी महान आत्माओं को
'कला समय' परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि

संस्था समाचार

कला समय संस्था का कविता पाठ

वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीकान्त जवणे के निज निवास पर नई कविता के वरिष्ठ कवि लक्ष्मीनारायण पयोधि, राग तेलंग और चित्रांश वाघमारे ने अपनी – अपनी चुनिंदा रचनाओं का पाठ किया। इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित ग़ज़लकार दीपक पंडित ने भी अपनी नई ग़ज़लों का पाठ किया। उपस्थित श्रोताओं में वरिष्ठ चित्रकार सुंदरलाल प्रजापति तथा चित्रांश वाघमारे के परिवार के सदस्य और फार्चून एन्क्लेव के स्थानीय श्रोताओं ने कवियों के रचना पाठ का लाभ लिया। श्रोताओं के आग्रह पर जवणे ने भी अपनी कुछ रचनाएँ सुनाई।

ललित शर्मा का शोध ग्रंथ 'राजाराणा झाला जालिमसिंह' पुस्तक का लोकार्पण

सनातन प्रकाशन एवं कलम प्रिया लेखिका साहित्य संस्थान जयपुर के संयुक्त तत्वाधान में देराश्री शिक्षक सदन, राजस्थान विश्वविद्यालय सभागार में 70 साहित्यकारों का सम्मान तथा छः पुस्तकों का लोकार्पण भी हुआ। इस अवसर पर ललित शर्मा इतिहासकार की इतिहास पर आधारित 'राजाराणा झाला जालिमसिंह' ऐतिहासिक पुस्तक का भी लोकार्पण सम्पन्न हुआ।

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 150/- रूपये, दो वर्ष : 300/- रूपये, चार वर्ष : 500/- रूपये, आजीवन : 5000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ।

पत्रिका का शुल्क रूपये ..... ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर .....

दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

ऑनलाइन सुविधा : 'कला समय' का बैंक खाता विवरण

ओरियन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

हस्ताक्षर

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजे।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

आपके पत्र

पत्रिका के बहाने

आदरणीय श्री भँवरलाल श्रीवास जी !

5-6 दिन पहले 'कला समय : सार्वभौमिक संगीत पर एकाग्र-2' पत्रिका प्राप्त हुई। मैं नि:संकोच स्वीकार करता हूँ कि संगीत मेरे जीवन का अंग कभी नहीं रहा। हाँ गीत एवं कविताओं से लगाव सदैव रहा है। कला समय का प्रस्तुत अंक अपनी कला-संगीत परम्परा के अनुकूल है। इसके लेखों में नई-पुरानी पीढ़ी का समागम दृश्यमान है। याद आ जाती है उन दिनों की जब मैं पाक्षिक 'मध्य प्रदेश संदेश' में विदिशा और साँची स्तूप के विभिन्न शिल्प पर लेख लिखा करता था। खामबाबा की यात्रा और हेलियोडोरस का गरुड़ध्वज, प्राच्य निकेतन की पत्रिका प्राच्य प्रतिभा तथा मध्य प्रदेश राज्य की मासिक पत्रिका 'समझ झरोखा' आदि में लेख लिखा करता था। निवेदन है कि कला केवल संगीत-नृत्य तक ही सीमित नहीं है, चित्रकला, मूर्तिकला भी इसी की परिधि में आते हैं। आगामी अवसर पर मूर्तिकला अथवा कला-प्रतीक पर लेख प्रेषित करूँगा। किमधिकम्। मंगल कामनाओं सहित,

– **ए.एल. श्रीवास्तव,** भिलाई (छ.ग.)

प्रिय श्रीवास जी, नमस्कार! 'कला समय' का अगस्त-सितम्बर 2018, अंक मिला। पत्रिका के नाम को सार्थक करता आवरण पृष्ठ देखकर लगा कि पत्रिका सही ट्रैक पर चल पड़ी है। डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का लेखन बहुत गहरा और अध्ययन परक होता है। भारतीय कला दृष्टि के संबंध में उनका आलेख हमारे ज्ञान की कई खिड़कियों को खोलता है और कई भ्रमों का निवारण भी करता है। डॉ. संतोष नामदेव का संस्मरण पठनीय तो है ही, साथ ही गुरू-शिष्य परंपरा को बल प्रदान करने वाला भी है। गुरू से कुछ लिया है, तो विनम्र भाव से उसको स्वीकार भी करना चाहिए। ठुमरी के बारे में पं. श्रीधर व्यास का आलेख गायन के शिक्षार्थियों के लिए काफी उपयोगी है। आलेख ने ठुमरी के संसार में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया है। गायन के किसी पक्ष के संबंध में इतना ज्ञानवर्धक और आधिकारिक विवरण कम पढ़ने को मिलता है। डॉ. श्यामसुन्दर शर्मा ने ध्रुवपद गायकी के शिखर पुरूष पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग के संबंध में पठनीय आलेख लिखा है। वे स्वयं ध्रुवपद गायक है, इस कारण लेख बहुत सटीक बन पड़ा है। पद्य रचनाओं के चयन की प्रशंसा करता हूँ। श्री देवेन्द्र सक्सेना के आलेख ने तबला पुरूष पं. किशन महाराज के बारे में पाठकों का अच्छा ज्ञानवर्धन किया है। 'कला समय' में सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों को भी अच्छा 'कवरेज' मिल रहा है, यह संतोष की बात है। पत्रिका में नाटक और नृत्यों संबंधी सामग्री बढ़ाने की आवश्यकता है। भोपाल में महिलाएँ कला के विभिन्न क्षेत्रों को समृद्ध बनाने में व्यक्तिगत और संस्थागत स्तर पर उल्लेखनीय काम कर रही हैं। उनको भी क्रमश: पत्रिका के पृष्ठों पर लाने के बारे में कृपया विचार करें। सुन्दर और पठनीय अंक के लिए बधाई।

– **युगेश शर्मा,** भोपाल (म.प्र.)

प्रिय भँवरलाल जी, सप्रेम नमस्कार! आशा है स्वस्थ सानंद होंगे। कला समय नियमित मिल रही है और अपने बदले हुए रंगरूप के कारण चर्चित भी हो रही है और सच पूछिये तो अच्छी भी लग रही है... कला साहित्य से जुड़े हुए पहलू के साथ अब कविता और कहानी को भी आप पत्रिका में सहेजने का प्रयास कर रहे है, यह सचमुच बहुत बड़ी बात है।आपका संपादन और संपादकीय दोनों लाजवाब है और आपने अच्छे लोगों की, शिष्टजनों की टीम बना ली है। आपके साथ आपकी टीम को भी ढेर सारी शुभकामनाएँ और बधाई। शेष ...

– **मनोहर काजल**, दमोह (म.प्र.)

कला समय पत्रिका से यह मेरी पहली मुलाकात है। प्रथम परिचय में ही पत्रिका ने अपनी उत्कृष्टता से दिल जीत लिया। अगस्त-सितंबर 2018 अंक का न केवल आवरण ही जीवन्त है,वरन अन्दर का शब्द समूह कला की हृदय को छू लेने वाली ऊर्जा से ओतप्रोत है। पत्रिका के लेख/साझात्कार/संस्मरण हमें कला के पहचान की बारीकियों से परिचित कराते है एवं कला को देखने की एक नई दृष्टि देते है। कला की समझ के साथ साथ कला के विकास की, कला के भिन्न आयामों की समझ भी सहज ढंग से स्पष्ट करते है। ठुमरी का उद्भव, यात्रा, विकास और विभिन्न रुपों से परिचिय रोचकता से परिपूर्ण है। पखावज(मृदंग), तबला सीखने की गुरु शिष्य परंपरा, सीखने सिखाने की पारम्परिक गुरुकुल संस्कृति में पुनर्विश्वास को जागृत करते है। पत्रिका, रोचकता, नवीनता एवं उत्कृष्ट जानकारी से परिपूर्ण है और इस उत्कृष्टता के लिये निस्सन्देह पत्रिका के सम्पादक गण बधाई के पात्र है।

– **राजेश सिंह**, मुंबई (महा.)

अनुरोध

कृपया कला समय के सदस्य बने। इस अनुष्ठान को आगे बढ़ाये। कला समय के सदस्य लेखकों, कलाकारों की रचनाओं को प्राथमिकता से स्थान दिया जावेगा। कला समय में समीक्षार्थ कला, संस्कृति और विचार पर केन्द्रित अपनी कृतियाँ हमें प्रेषित करें। समीक्षा हेतु कृति दो प्रतियों में भेजे। हमारे लिए भेजी हुई पुस्तके लौटाना मुमकिन नहीं होगा।

-सम्पादक

नन्हें कलाकारों की दुनिया

यह मुन्नियों और मुन्नों का संसार हैं, इसमें किसी भी किस्म की बिना छापवाले मनों की चौकड़िया और कुलांचे हैं। इन नवांकुरों की भावी छलांगों की सम्भावनाओं को यह पृष्ठ समर्पित हैं– कला समय।

सौम्या बैराठी

7 वर्ष की उदीयमान बाल फैशन मॉडल के रूप में राजस्थान के उदयपुर शहर में अपनी पहचान बना रही है। 5 वर्ष की उम्र से ही सौम्या कोटा व अन्य शहरों में होने वाली विभिन्न फैशन प्रतियोगिताओं में भाग ले रही है। उनमें से दो प्रतियोगिताओं में सौम्या ने राजस्थान स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त किया है। विशेष प्रिंस, प्रिंसेस लेकसिटी खिताब अपने नाम किया। इन दिनों मॉडलिंग के गुरू जी. राजेश शर्मा के सान्निध्य में सीख रही है।

तनिष्का हतवलने

नन्हीं भरतनाट्यम नृत्यांगना एवं थियेटर आर्टिस्ट है। तनिष्का ने ढाई वर्ष की उम्र में भारत भवन जैसे प्रतिष्ठित मंच पर अपनी पहली भरतनाट्यम प्रस्तुति से दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया था। हाल ही में सोनी टेलीविजन के कार्यक्रम सबसे बड़ा कलाकार की मेगा फाइनलिस्ट रह चुकी है। देश-विदेश के मंचों पर अपनी कला बिखेरी है। तनिष्का ने छोटी उम्र में ही अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। इन दिनों विहान ड्रॉमा वर्क्स के साथ जुड़ी है।

आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं को उजागर करने हेतु इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते है – संपादक

स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है - सिमोन द बुआ

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

- निर्मिश ठाकर

अश्विनी भावे

आयशा जुल्का

अभिनेत्री बीना

जया बच्चन

'श्रृंगार करती आदिवासी नारियाँ' प्रभाववादी आधुनिक शैली तैलचित्र (4 X 3 फुट) : डी. जे. जोशी
भोपाल स्थित रमेश नूतन के निजी संग्रह में

'डी.जे. जोशी', प्रभाववादी आधुनिक शैली में आइल पेस्टल से राजाराम द्वारा चित्रांकित शहीब (15''X15'')

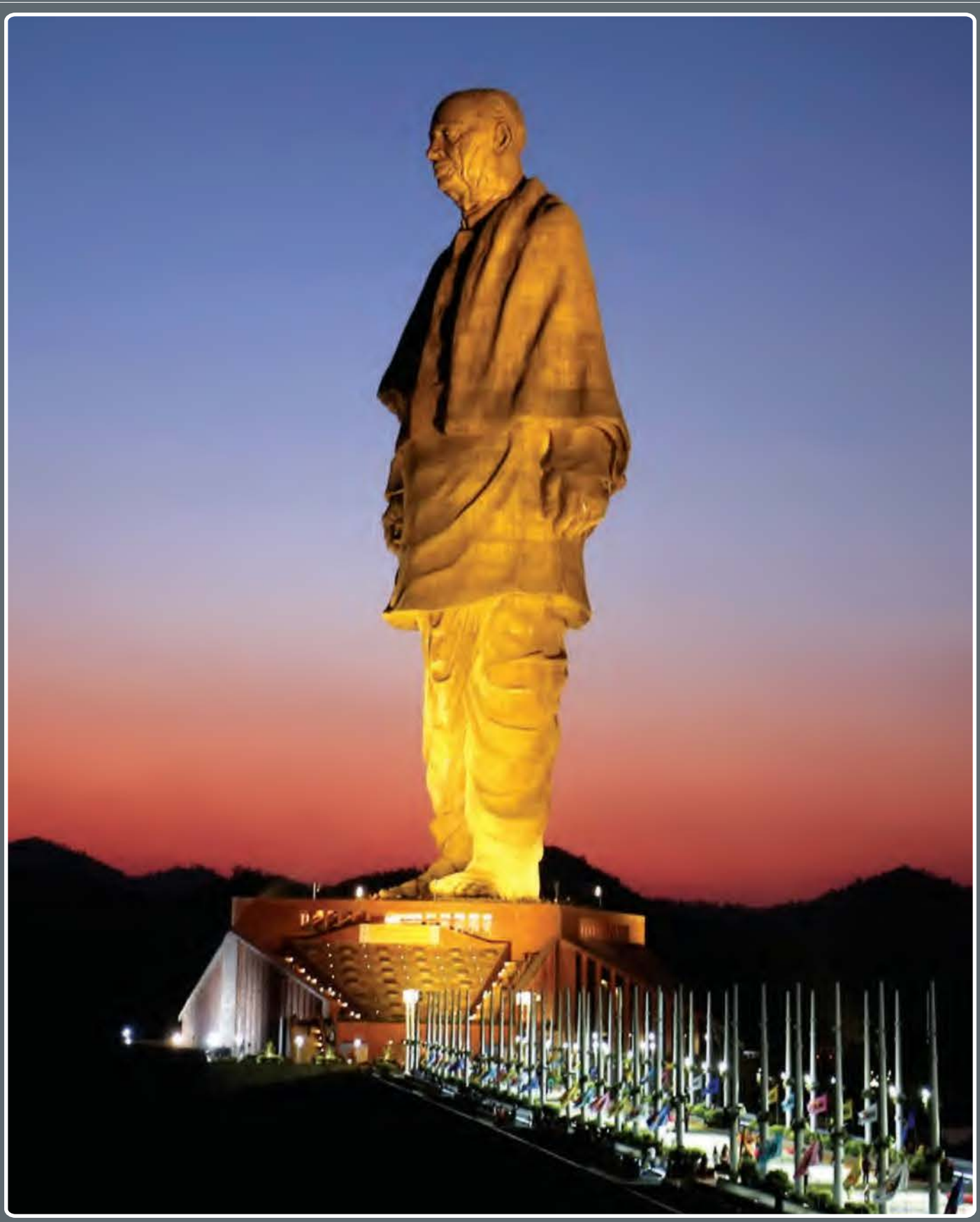

'एकता की मूर्ति' लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल

दुनिया की सबसे ऊंची प्रतिमा 'स्टैच्यू ऑफ युनिटी' के शिल्पकार : रामवन सुतार

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वात्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास